॥ ॐ ॥ ॐ नमो वागीश्वर्यै ॥ ॐ ॥

श्री गोवर्द्धन-अभिनन्दन-ग्रन्थ

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा: ।
नास्ति येषां यश: काये जरामरणजं भयम् ॥
"भर्तृहरिः"

सम्पादक :—
साहित्यालङ्कार काव्यतीर्थ
श्री सत्यनारायण प्रसाद शर्मा
साहित्यपुराणाचार्य ।



श्री सरस्वत्यै नमः

द्वितीय प्रकरण

१—निबन्धाः ...
२—श्रौत-स्मार्त-पौराण-देवता-विमर्शः ...
३—सुख-स्वरूप-विवेकः ...
४—साहित्यस्य सद्व्युत्पत्ति शास्त्रत्व-समर्थनम् ...
५—गीता-शास्त्र-सारः ...
६—संस्कृत-समुन्नति-साधनानि ...
७—संस्कृत-साहित्य पर एक दृष्टि ...
८—साहित्य और उसकी गति-विधि ...
९—कुछ भाषा के शब्द और उनकी आधार-शिला ...
१०—संस्कृत-साहित्य का महत्त्व ...
११—शिक्षा का महत्त्व और भारत ...
१२—प्राचीन और आधुनिक संस्कृति ...
१३—कालिदास और प्रकृति ...

तृतीय प्रकरण

१—स्नातक-परिचय ... २०
२—सम्मतियाँ ... २१५
३—श्रीराजस्थान संस्कृत-विद्यालय का संक्षिप्त इतिहास ... २१७

प्राक्कथन

'उत्तमा आत्मना ख्याता.' संस्कृत की एक लोकोक्ति है। इस विशाल सृष्टि प्रत्येक प्राणी प्रगति पथ पर अग्रसर होने की अत्यधिक चेष्टा किया करता है। उसके जीवन एक लक्ष्य बन जाता है प्रगति करना, और वह प्रगति के लिये इतना अत्यधिक लालायित हो जाता है कि इसके लिए अपने पिता, मामा, ससुर, मित्र एवं प्रिय सम्बन्धी आदि की प्राप्त करने की भी अत्यधिक चेष्टा करता है। किन्तु कतिपय जन्मना सिद्ध प्रकृतिक ऐसे महा पुरुष भी होते हैं, जो प्रगति के लिए किसी की सहायता भी अपेक्षित नहीं समझते। उन्ह के लिए ही उक्त लोकोक्ति है।

हमारे इस 'अभिनन्दन ग्रन्थ' के चरित नायक पूज्य पण्डित जी पर यह उक्ति सर्वांश चरितार्थ हुई है। पूज्य पण्डित जी का यश जो दिग् दिगन्त फैला हुआ है, इसमें दूसरे पुरुष नामधारी की सहायता नहीं है। यह समस्त पण्डित जी के ही विशाल भुजदण्डों उपार्जित किया हुआ है।

ऐसे महापुरुष का क्यों न अभिनन्दन किया जाय, जिसके जीवन का प्रत्येक अनुकरणीय हो, जिसका जीवन बालकों का चरित्र-निर्माता, युवकों का पथ-प्रदर्शक वृद्धों का अभिनन्दनीय हो, जिसने कालधर्म के अनुसार ह्रास की ओर द्रुतगति से हुई कल्याणमयी गीर्वाणवाणी को प्राचीन महर्षियों द्वारा प्रदर्शित भावुकपद्धति से एक रूपको स्थापित कर अतिशय सेवा की हो? जिस समय पं० जीने इस विद्यालय को किया था, उस समय सुदूर पर्यन्त संकल्पमात्र शुद्ध उच्चारण करनेवाला भूदेव दृष्टिगोचर होता था। श्री राजस्थान संस्कृत-विद्यालय ने सैकड़ों ऐसे सुयोग्य छात्र तैयार किए हैं, देववाणी का अध्ययन कर प्राचीन भारतीय संस्कृतिको अक्षुण्ण रखने की प्रतिज्ञा की है। इस विद्यालय में छात्रों की वेशभूषा, वेदमन्त्रोंका सुमधुर उच्चारण, अग्निहोत्र की सुगन्धित पटली, उन पवित्र आश्रमों की याद दिलाते हैं, जिनमें निवास कर प्राचीन कालमें दर्शी महर्षियों ने विश्व को अध्यात्म विद्या जैसी देन दी थी।

उपर्युक्त बात को ध्यान में रख कर विद्यालय के छात्र-स्नातक, एवं मान्यों श्रीमान् पं० जी को अभिनन्दित करने का विचार किया। इसी पुनीत अवसर पर पण्डितजी के पावन-पाणि पङ्कजों में 'श्री गोवर्धन-अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पण करने का श्लाघनीय विचार किया। ग्रन्थ के सम्पादन का भार उन्होंने मेरे निर्बल कन्धों पर तथा मुझे सम्बल देने के लिए एक ग्रन्थ-व्यवस्थापक समिति भी बना दी। यद्यपि मैं विशाल ग्रन्थ का सम्पादन करने की क्षमता एवं योग्यता नहीं रखता, परन्तु गुरुजनों एवं

इतने विशाल ग्रन्थ का सङ्कलन केवल ८ मास में हुआ; उसमें भी सप्ताहों तक कई बार इसका कार्य रुका रहा। जिन-जिन शिष्यों के लेख, शुभकामना, श्लोक आदि अपेक्षित थे, वे सुदूर प्रान्तों में फैले हुए होने के कारण उपयोगी सामग्री शीघ्र न भेज सके। साथ-साथ कई एक लेखकों ने भी मन्थर गति से काम लिया। फिर भी उनकी सहायता से यह ग्रन्थ इस रूप में आप लोगों के कर कमलों में विराजमान है।

इस ग्रन्थ में जिन विद्वानों की रचनाएँ हैं, वे तो धन्यवादार्ह हैं ही, परन्तु पूज्य पण्डित जी के सुपुत्र द्वय पं० उमाशङ्कर जी आयुर्वेदाचार्य एवं साहित्यालङ्कार पं० परमानन्द शास्त्री विशेष बधाई के पात्र हैं; जिन्होंने सामग्री के क्रम-विन्यास में मुझे अत्यधिक सहायता दी है। श्रीमालचन्द वर्मा विशारद को भी हार्दिक धन्यवाद है, जिन्होंने कतिपय लेखों की प्रतिलिपि करने में विशेष सहायता दी है।

ग्रन्थ जैसा भी बन सका है, वैसा आपके सामने है। इसके गुण-दोषों की परीक्षा का भार आप पर है; परन्तु मेरी अयोग्यता एवं समयाल्पता को ध्यान में रखते हुए आशा है, आप दोषों पर ध्यान नहीं देंगे। मानव-कृति में दोष रहना स्वाभाविक है, उसकी कोई भी कृति निर्दोष नहीं होती। अस्तु।

विद्वानों से विनम्र प्रार्थना है कि वे प्रेसमैनों की असावधानी से अथवा अन्य कारणों से रही हुई अशुद्धियों की सूचना अवश्य दें, ताकि अगले संस्करण में उनका संशोधन किया जा सके।

तारानगर
पौ० कृ० २
२००६

विनम्र :—
सत्यनारायण प्रसाद

समर्पण

हे महामहिम आचार्य्य !

पञ्चाशद्वर्षीय देशसेवाओं के उपलक्ष में आपके पावन पाणिपङ्कजों में श्रद्धावनत अकिञ्चनों की यह भाव-कुसुमाञ्जलि सादर समर्पित है ।

देव !

इसे सानुग्रह ग्रहण कर हमें आशीर्वाद दीजिए, हम भी आपके पद-चिह्नों पर चलते हुए देश-सेवा के पवित्र पथ पर अग्रसर हो सकें ।

तारानगर
वि० सम्वत्, २००७

हम हैं आपके—
मित्र, शिष्य, प्रशिष्य, स्नातक एवं गुरुभ्राताओं के अन्य सेवक ।

ग्रन्थ व्यवस्थापिका समिति

१ पं० गोपालचन्द्र जी शास्त्री, अध्यक्ष कनहपुरिया आयुर्वेद विद्यालय, राजगढ़।

२ के० के० श्रीनिवासाचार्य वैद्यपञ्चानन, अध्यक्ष भारद्वाज फार्मेसी, सरदारशहर।

३ पं० हनुमत्प्रसाद शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य, श्री सनातन आयुर्वेद विद्यालय, बीकानेर।

४ पं० बदरी प्रसाद जी आचार्य, अध्यक्ष ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू।

५ आचार्य उमाशंकर वैद्य, अध्यक्ष सेवासमिति दातव्य औषधालय, सरदारशहर।

६ साहित्यालङ्कार पं० परमानन्द शास्त्री 'निर्भय', तारानगर।

७ पं० नारायणदत्त शास्त्री 'प्रभाकर', तारानगर।

८ मालचन्द्र वर्मा 'विशारद', बीकानेर।

९ साहित्यालङ्कार सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, राजगढ़।

श्री गोवर्द्धन अभिनन्दन-ग्रन्थ

मंगल-गीत

(१)

विबुध - बुधशिरः सुन्दरमधुकर - चुम्बितपादसरोजा ।
जित - युगभूधर - शृङ्गमनोरम - पीनोन्नत - सदुरोजा ॥

(२)

पीवरतुङ्गे मंजुनितम्बे सञ्चित - काञ्चन - काञ्ची ।
करसरसिजधृत - जघननिवेशित-कच्छपिकाख्यविपञ्ची ॥

(३)

गलजितकम्बुः कचजितजम्बूः सान्द्रनवाम्बुद शोभा ।
कान्तसुकोमल - कुञ्चितकुन्तल - चुम्बनजानुविलोमा ॥

(४)

नाभिविनिन्दित - सन्ततघूर्णित - देवनदीभ्रमिरोचिः ।
जानूरुत - करि - वरकर - कदलीस्तम्भमनोरमरोचिः ॥

(५)

अनुपमवदना निरुपमनयना भ्रूजितमन्मथचापा ।
तिलसुमनासा वरतनुभासा शुचिनहेमकलापा ॥

(६)

ललाटतटजित - कलङ्कविरहित - शीतलदीधितिखण्डा ।
अनगगलोचनमोहन - काञ्चनकुण्डल - मण्डितगण्डा ॥

(७)

अधरधारहृत - नूतनविकसित - किंशुककुसुमकान्तिः ।
[illegible] हसितमुखकला मौक्तिकदन्ताभकान्तिः ॥

(८)

[illegible] कमलजकान्ता [illegible] ।

शुभाभिशंसनम्

आचार्य "चन्द्रमौलि" बीकानेर

जीवनं सफलायितम् आदर्शभूतं यस्य हि !
तस्य जननियहे कथन्नो जायतामभिनन्दनम् ।
शारदा संराधने विद्याप्रचारे पाठने ।
आसीत्प्रवृत्तिर्मानसी तस्यैव स्यादभिनन्दनम् ॥१॥

स्नातकाः देशान्तरेषु कार्यव्यापृतमानसाः ।
यस्य विदुषश्चात्मजा इव तस्य स्यादभिनन्दनम् ।
भारतीय सुसंस्कृतेरादर्शभूतो विग्रहः ।
दृश्यते बुध सहजन्तस्येह स्यादभिनन्दनम् ॥२॥

जनयतात् जननी यथा गोवर्धनो जातः सुधीः ।
धुरिधन्वरत्नस्यामितं दिविगीयतेऽप्यभिनन्दनम् ॥
यस्यगुणगरिमाश्रिता अन्ते वसन्तो मेधया ।
वर्चसा ख्याता जगत्यां तस्य स्यादभिनन्दनम् ॥३॥

अभिमानभूमिर्भारतस्य पण्डितो गोवर्धनः ।
दिग्दिगन्तेष्वे तु प्रसरं गीयतामभिनन्दनम् ॥
जीवतात् शरदांशतं श्री बुद्धिमच्चूडामणिः ।
श्रीचन्द्रमौलि कवीश्वरेण गीयतामभिनन्दनम् ॥४॥

॥ गुरु-दरबार, भजन लावनी गाना ॥

दोहा—जुग जुग में जीवित रहे गुरु ब्रह्म दरबार।
विद्या वेद पुराण धन जहँ पावे फल चार ॥१॥
विद्या गुण भंडार, आपकी महिमा है भारी ॥टेक॥
सिद्धान्त चोक—तारानगर निवास हरि के दास बड़े उपकारी २।
वे पण्डित जी महाराज गोवर्धनधारी ॥
तिक्षण बुद्धि विशाल पढ़ावें बाल शीलव्रतधारी २
वे गुरु जी का दरबार सदा सुखकारी ॥
झाड़—चुन चुन के लरको ल्यावे, फिर सबकूँ आप जीमावे।
पुत्र के समान पढ़ावे, सुजन की सेवा भावे ॥
संगीत—मैं भी रहा एक मास अच्छी विद्या पाई है।
खान पान अन्न वस्त्र जुगती लगाई है ॥
घर से रुपया दिया पुस्तक भी मंगाई है।
सच्चे प्रेम नेम मुझे भागवत पढ़ाई है जी ॥
गुरु जी उत्तम उपकारी, विद्या गुण भंडार० ॥१॥
सिद्धान्त चोक—करते विद्या दान सुजन सन्मान दया में राता २।
गुरु समान कुण और मात पितु भ्राता ॥
वाणी विमल विशाल प्रभु के लाल हाथ के दाता २।
मैं करता मन में याद हिया हर्षाता ॥
झाड़—नहीं लेवत आप पढ़ाई, दिल ऐसी भक्ति भाई।
गुरु जी कीनी बहुत भलाई, इक मुखसे सकूँ न गाई ॥
संगीत—ब्राह्मणों के बाल जिन प्रेम से पढ़ाये हैं।
ब्रह्म का समाज देख हिये हर्षाये हैं ॥
सुजन की सेवा मांही सदा मन लाये हैं।
उत्तम लक्षण आप सब ही के मन भाये हैं जी ॥
गुरु जी गंगाजल झारी, विद्या के भंडार० ॥२॥
सिद्धान्त चोक—सदा धर्म का काम गुरु का धाम मोक्ष का द्वारा २।
[illegible]

झाड़—वे सदा प्रभाते न्हाते, फिर मंत्र वेद के गाते।
संध्या वंदन चित लाते, ता पीछे ग्रन्थ पढ़ाते॥
संगीत—आठ पहर साठ घड़ी वेद का विहार है।
देस की कुचाली सारी बिगड़ी सुधार है॥
महर्षी सन्तान जाके सदा यही कार है।
गुरुजी का धाम जाकी महिमा अपार है जी।
गुरुजी सच्चेतपधारी, विद्या के भण्डार॥३॥
सिद्धान्त चोक—गावे कान्हिराम सिखरपर धाम नगर गुलझारी रा
जहां बसते श्री गुरुदेव भगत नर-नारी।
करें हरि.गुण गान लगावें ध्यान हिये हरीयाली रा
जहां शीत घाम नहीं रोग, भक्ति उजियाली।
झाड़—जहां शंकर परमानन्दा, नहीं जन्म-मरणका फन्दा।
वे भजते बालमुकन्दा, नित गावत गुरु गोविन्दा॥
संगीत—बोलो राम जी हरे दुविधा दूर करे।
बोलो नारायण हरे सारे कारज सरे॥
बोलो ठाकुर जी हरे बेड़ा पार करे।
बोलो प्रेम से हरे सारे विघन टरे जी॥
गुरु के चरणूं बलिहारी विद्या के० ॥४॥
दोहा—गुरुजी के दर्बार में सब बस्तु का ठाठ।
रोटां रा कोठा भरया निर्मल जल का माट॥१॥

कवित्त

चुन चुन ल्याये धान सब ही को राख्यो मान ब्राह्मणों के बाल आप प्रेम से पढ़ाये हैं।
मेरो मुख एक याते काहे से प्रशंसा करूं सागर जेते गुण नांही गागर में समाये हैं॥
गोवर्द्धन जी शास्त्री एसो उत्तम मुनीश एक सुजन की सेवा मांही सदा व्रत लाये हैं।
हर्षकी है बात आज सुण्यो है समाज राज होय धार बाक पुष्प भेंट को चढ़ाये हैं॥१॥



चरित नायक —

काव्यसंपद—पण्डित राज गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री, महोपदेशक

(राम-चिन्तन के क्षणों में)

श्रीयुक्त ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकर संस्कृत-प्राण
वैयाकरण-केसरी महोपदेशक

पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री

—का—

संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त

लेखक :—

चन्द्रनारायण शर्मा, बी० काम ; विशारद

पाटनी पैलेस, कलकत्ता।



मुझे "श्री गोवर्द्धन-अभिनन्दन-ग्रन्थ" के यशस्वी सम्पादक ... कविराज सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य का ... श्रद्धेय पं०जीके जीवन-वृत्तान्त को लिखने का मिला ; तब मस्तिष्क में एक वि... सिहरन हो उठी, हृदय आनन्द के अपार सागर के अपूर्व प्रवाह में निमग्न... गया और होने लगा आत्मा में आनन्द का एक विशेष स्पन्दन।

अहा ! आज वर्षों से नग्न-घृणित चरित्र-चित्रण से कलंकित ... कलङ्क-कालिमा महापुरुष के जीवन-वृत्तान्त लिखने से धुल जायगी !

युग-युगान्तर से हृदय में विद्यमान अन्धकार भी इस प्रकाण्ड विद्वान... प्रबोध-प्रकाश से दूर हो जायेगा और मुझे प्राप्त होगा अपूर्व यश एवं अतु... सुषमाका साम्राज्य !

श्रद्धेय पं० गोवर्द्धन प्रसादजी शास्त्री महोपदेशक इस विराट ... प्रान्त के सर्वाङ्गी धर्मोद्धारक, विद्याप्रचारक एवं धुरन्धर विद्वान् हैं। ... जीवन प्रत्येक विद्याव्यसनी, सज्जन, आदर्श गुरु एवं देश-धर्म तथा जातिप्रेम... लिए अनुकरणीय है। आपके अध्यवसाय एवं उत्साहपूर्ण जीवन के ... का स्मरण कर रोमाञ्च हो उठता है, अत्यधिक विस्मय होता है और हृदय ...

जन्म—बाल्यकाल—शिक्षा

आपका जन्म सं० १६३८ विक्रम माघ शुक्ला प्रतिपदा शुक्रवार को प्रसि ब्राह्मण-वंश में हुआ। आपकी जन्मभूमि यही तारानगर है, जिसमें कि आपक अपूर्व अभिनन्दन-समारोह मनाया जायगा। आपके पूज्य पिता पं० देवीदत्त शर्मा प्रसिद्ध विद्वान एवं प्रख्यात ज्योतिषी थे। आपकी माता श्रीमती तारा दे भी सुयोग्य, सन्तति-पालन-प्रवीण एवं धर्मात्मा थीं। आप के वंश में ज्योति तो बहुत अच्छे-अच्छे हो गए हैं। कहते हैं आपके ३-४ पीढ़ी पूर्व पं० घासीरा जो ज्योतिषी तो किसी की जन्मपत्री आदि बनाते समय पहले ही कागज पर लि दिया करते थे कि यह व्यक्ति दक्षिणा-रूप में मुझे अमुक वस्तु देगा। आपकी ज्योतिष-विद्या के चमत्कार से प्रभावित होकर बीकानेरके भूतपूर्व महारा गजसिंह जी ने आपको कितनी ही भूमि पारितोषिक-स्वरूप प्रदान की थी। आपके पितामह श्रीमान् पं० गणेशदास जी भी बड़े सरल, सौम्य एवं भगवद्भक्त थे।

आपका शैशव बड़े आनन्द के साथ व्यतीत हुआ है। आप बाल्यका में बहुत ही चञ्चल प्रकृति के थे। आप शैशव में अपने दादा जी के पास रहा करते थे; वे भगवद्भक्त थे ही, अतः आपको भी भगवद्विषयक उपदेश ए कथाएँ बड़े प्रेम से सुनाया करते थे। फलस्वरूप आप सनातन-धर्म के प्रब पक्षपाती एवं भगवान् शङ्कर के अनन्य भक्त हैं। 'नवीने भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्' यह उक्ति आप पर पूर्ण रूपसे चरितार्थ हुई है।

आपका अध्ययन-काल तो बड़ा जीवट एवं उत्साहपूर्ण तथा विचित्र घट नाओं से युक्त था। आपने ८ वर्ष की अवस्था में ही विशिष्ट अध्ययन की सुन आशा को ध्यान में रखकर गृह त्याग कर दिया था। इससे पहले आपने वर्ण बोध, बड़ी पहाड़ा, मामूली हिसाब एवं देवताओं की स्तुतियाँ कण्ठाग्र कर ली थीं। सबसे पहले आप सिरसा गए और [illegible] संस्कृत पाठशाला के तत्कालीन अध्या पक श्रीमान् पं० ऋषिराम जी के पास अध्ययन करने लगे। पं० ऋषिरामजी कुछ समय बाद भटिण्डा चले गए और उनके साथ आप भी भटिण्डा चले गए। वहाँ आप बड़े उत्साह एवं संलग्नता के साथ अध्ययन करने लगे। आपके सहपाठी आपकी प्रतिभा से ईर्ष्या करने लगे और एक दिन उन्होंने स्नान के समय तालाब में आपको धक्का दे दिया। परन्तु भाग्यवश वहाँ कपड़े धोते हुए [illegible] ने [illegible] आपको बाहर निकाला। आप पं०जी के पास [illegible] हठ करने लगे कि मैं तो अब यहाँ नहीं रहूँगा। पं०जी

आपको बहुत कुछ समझाया, सहपाठियों को ताड़ना भी दी ; परन्तु आप नहीं
ने और फीरोजपुर छावनी चले गए। वहां से कुछ दिन बाद ही लौट आए
र सिरसा में पं० कृष्णानन्द जी के पास तत्परता से अध्ययन करने लगे। इसी
च आपका विवाह भी हो गया, परन्तु इसका आपकी शिक्षा पर कोई दुष्प्रभाव
ीं पड़ा।

उसके बाद आपने बनारस जाने की योजना बनाई। पैसा न होने के
रण आपने पैदल बनारस जाने की ठान ली। आपने दो एक सहपाठियों को
थ लिया और बनारस की ओर चल पड़े।

कई दिन चलते चलते आप देहली पहुंचे और 'झण्डे वाली' पाठशाला में
कर विश्राम किया। वहां के छात्र एवं अध्यापकों ने वहीं रहने का आग्रह
या, परन्तु आपके हृदय में तो काशी जाने की धुन थी, आप वहां कैसे रह सकते
! निदान काशी की ओर चल पड़े। रास्ते में कहीं गाड़ीपर चढ़ लेते, कहीं
दल चलते, इस तरह करते बनारस पहुँचे। वहां आप कई पण्डितों से मिले।
ाशी के तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् श्री गोविन्द शास्त्री के पास आपने ५ वर्ष तक
याकरण, काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, ज्योतिष एवं पुराणेतिहास का अध्य-
न किया। आपने अध्ययन के साथ साथ सभा सोसाइटियों में भी जाना आना
ारम्भ कर दिया। अपने सहाध्यायीवर्ग से शास्त्रार्थ भी करते थे, इसी के फल-
वरूप आप आगे चल कर 'महोपदेशक' एवं 'सफल शास्त्रार्थी' कहलाए।
ास्त्रों का अध्ययन कर चुकने पर आप १८ वर्ष की अवस्था में गुरुदेव की
आज्ञा लेकर तारानगर आ गए। घर आते समय श्री गोविन्द शास्त्री ने आपको
आशीर्वाद दिया था कि "यही विद्या तुम्हारे लिए कल्पवृक्ष हो जायगी" और हुआ
भी ऐसा ही।

कार्यक्षेत्र और सेवाकार्य

सं० १९६६ में बनारस से विद्याध्ययन कर लौट आने के बाद तारानगर
निवासी श्रीमान् सेठ हीरालाल जी मन्त्री, बलदेवदास जी खेमाणी, हरिदास जी
आचार्य आदि तात्कालिक गण्यमान्य व्यक्तियों के विशेष आग्रह करने पर आपने
श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। उस समय राजगढ़ से टीका.

अतः आपने उस निमन्त्रण को अस्वीकृत कर दिया। श्री राजस्थान संस्कृत वि
लय की स्थापना के समय आपकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। परन्तु; '
हि न वयः समीक्ष्यते' के अनुसार आपने यह कार्य कर दिखाया, जिससे
तारानगर के इतिहास में एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ। आपकी म
के सामने दैव को झुक जाना पड़ा।

जैसा कि सदैव होता है, इस शुभ कार्य को आगे बढ़ाने में भी बहुत
आये, परन्तु आपकी कर्तव्यपरायणता सतत उत्साहशीलता के सामने ठहर न सके
यहाँ के कई पण्डित नामधारी क्षुद्र जन्तुओं ने अज्ञानमदाक्रान्त हो वि
को विध्वंस कर देने की कुचेष्टाएँ कीं, परन्तु आपके प्रभाव के सामने उन्हें हार म
पड़ी। जलोद्भूत बादलों का कृत्रिम अन्धकार कर्मवीर सूर्य की प्रचण्ड किरणों के
तेज को कथावशेष करने में न आज तक समर्थ हो सका है और न हो सकेगा।

आपने श्री राजस्थान विद्यालय में ही 'सनातनधर्म-सभा' की स्थापना
की। इसके द्वारा आपकी अध्यक्षता में छात्रों को वाक्पटु बनाया जाता था।
जनता ने इस सभा द्वारा अत्यधिक धार्मिक लाभ उठाया। सनातनधर्म एवं पौराणिक
जटिल विषयों पर आपका बड़ा ही मार्मिक भाषण हुआ करता था।

तारानगर का वर्तमान मिडिल स्कूल, जो आजतक न मालूम कितने ही छात्रों
को सुयोग्य बना चुका है, आप ही की कृपा का फल है। आपने ही इसे प्राइमरी
स्कूल से मिडिल स्कूल के रूप में परिणत करने की चेष्टा की।

इसके बाद आपने सनातनधर्म पुस्तकालय की स्थापना की, जिसने जनता
की बहुत वर्षों तक सेवा की थी। यह पुस्तकालय विद्यालय के अन्तर्गत ही वर्ष
वर्षों तक रहा। आप जिस प्रकार की जनसेवा करने के इच्छुक थे, वैसी सेवा इसके
द्वारा न होते देख आपने इसे विशाल रूप देना चाहा। और आपकी वही इच्छा
नगर मध्यवर्ती इस विशाल सार्वजनिक पुस्तकालय के रूप में परिणत हुई। इस
कार्य को करने में नगर के धनीमानी सज्जनों ने बहुत चेष्टा की थी। आज यह
पुस्तकालय जनता की स्वामी सेवा कर रहा है।

केवल मनुष्यों के लिए ही शिक्षा का साधन जुटा देनेसे आपकी अन्तरात्मा
प्रसन्न न हुई। आपका ध्येय था तारानगर के स्त्री-पुरुष—उभय वर्ग—को
शिक्षित एवं सदाचारी बनाना। आपने स्त्री-शिक्षा के विषय में कई एक
व्याख्यान देकर लोगों को इस ओर आकृष्ट किया। आपके भाषणों से प्रभा-
[illegible] सेठ नारायणदासजी सरावगी ने कन्याओं के पढ़ने के लिये

अपनी हवेली में स्थान दे दिया। उस समय आपकी शिष्या श्रीमती भग. देवी ने उस कन्या पाठशाला की अध्यापिका होना स्वीकृत किया जो आपके रि. स्थानीय डाक्टर श्री गुलजारी लाल जी की सुपुत्री थी। इस कार्य से प्रसन्न हो शिक्षा विभाग बीकानेर एवं रिलीफ सोसाइटी कलकत्ता ने कन्या पाठशाला अपने हाथों में ले लिया। आज इसी कन्या पाठशाला में लगभग १५० शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

शिक्षा प्रचार द्वारा जनसेवा के साथ-साथ आपने अन्यान्य प्रकार से जनसेवा करने का निश्चय किया। आपकी इस महत्त्वाकांक्षा एवं जनसेवा आदर्श से प्रभावित होकर तात्कालिक नाजिम ने आपको "म्युनिसिपल ी का मेम्बर चुना। आपने १८ वर्ष तक उक्त पद पर कार्य करते हुए ग्रामसेवा की।

तारानगर का निकटवर्ती बूचावास नामक गांव अग्निदेव की लपटों भस्मीभूत हो रहा था। उस समय आपने तारानगर के नवयुवकों को उस ग्राम सेवा में अपने सर्वस्व की बाजी लगा देने के लिए प्रोत्साहित किया। आप प्रेरणा से श्री हीरालाल चौधरी आदि नवयुवकों ने उस समय ग्रामीणों अत्यधिक सहायता की। आप भी उस भयङ्कर अग्नि से उत्तप्त गांव में जा नवयुवकों का उत्साह बढ़ाते रहे।

इस प्रकार जनसेवा के समस्त साधन जुटा देने के अनन्तर आपके हृदय जो पशुकल्याण की अटल भावना विद्यमान थी, उसे भी मूर्त रूप देने के लिये अ कटिबद्ध हो गए। गोशाला स्थापित करने में आपको बड़ी-बड़ी ठिना. का सामना करना पड़ा। परन्तु आप घबड़ाये नहीं। लगातार ५ मास त 'गोशाला की उपयोगिता' एवं 'गोसेवा के महत्त्व' पर आपके व्याख्यान हुए गोशाला के लिए भूमि-प्रदानार्थ आपने श्री तोलाराम वैद को प्रेरित किय स्थानीय साहूकारों के द्वारा चन्दा लिखाया गया और यह ो. स्थापित की गयी। गोशाला-स्थापन में श्री बालकनाथ जी स्वामी ने अत्यधि सहायता दी थी। उन्होंने गोशाला के सञ्चालन के लिए भी प्रतिज्ञा की थी

आपने 'हरिकीर्तन मण्डल' एवं 'ब्राह्मण पञ्चायत महासभा' आदि संस्थाएं हालमे ही स्थापित की हैं। इनके द्वारा भी तारानगरीय जनता की सेवा होती है।

जंजीरें एक-एक करके टूट रही हैं। निःसंदेह खुशी है कि भारत-माता है। हमारा हृदय हर्ष से फूला नहीं समाता। किन्तु अब जब हम स्वयं अ विधायक हैं, यह दर्दनाक पत्थर के दिल को भी दहला देनेवाला खबर क्यों ? पारस्परिक कलह का शंख आज क्यों फूँका जा रहा है ? के खून का प्यासा मानव आज इस निष्ठुरता से अपनी नस्ल की इस फसल को क्यों बरबाद कर रहा है ?

इन सब झगड़ों का कारण केवल एक ही है और वह है शिक्षा का और अज्ञान की प्रचुरता।

वैसे तो लड़नेवालों के लिए लड़ने के अनेक बहाने हैं, किन्तु मोटा यह है कि लड़ाई द्वेष से पैदा होती है, द्वेष स्वार्थ से उत्पन्न होता है अ अज्ञान से। सच पूछो तो यह अज्ञान ही अन्धकार है। सब विपदाओं के यही बोता है। अतः उन्नति की लम्बी मंजिल तय करने की इच्छा र शिक्षा पा कर ही कार्य-क्षेत्र में आते हैं।

अज्ञान को समूल नष्ट करने का एक मात्र साधन शिक्षा ही है। ही वह सच्चा आत्म-बल प्राप्त होता है, जिसके आश्रय से विश्व-शान्ति की होती है। उपर्युक्त विचारों का अध्ययन करने पर हमें यह कहते किसी प्रकार संकोच नहीं होता कि देश के राष्ट्रिय उत्थान और नैतिक अभ्युदय के लिए की बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना उन्नति की अभिलाषा करना एक मात्र है।

ज्ञान की निर्मल ज्योति शिक्षा से ही उत्पन्न होती है। यह ज्योति ही लोगोंका जीवन है। उस पर शैतान की छाया पड़ती है, जिसका फल मानवता लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। यदि अज्ञान विष से भरा पात्र है तो जीवन सरसा देने वाला मधुकलश है। एक मारता है, दूसरा जिलाता है। इसी सो कहते हैं कि शिक्षा का पलड़ा भारी है। बहुत भारी है। स्वभाव से ही य वजनदार है। जीवन को सुख और शान्तिमय बनाने के लिए हमें इसी श पाना होगा।

शिक्षा ज्ञान पैदा करती है और ज्ञान हमें चिरंतन सत्य के दर्शन करात है। यह संसार नाशवान् है, किन्तु यह सत्य सदा शाश्वत रहता है। कभी किसं अवस्था में इसका लोप नहीं होता। यह प्रेम—भाव को दृढ़ करता है।

सच, मजाक की बात नहीं, अब थोड़ी देर के लिए आसमान की ओर आंख

पाकर देखिये। यहां से दूर-बहुत दूर-क्षितिज के पास सूर्य चमक रहा है। उसकी र्मी पाकर फल, फूल और पौधे पनप रहे हैं। इस पर भी कोई बुद्धिहीन प्राणी अपनी आंखों को अपनी अंगुलियों से ढांप कर यह कहे कि सूर्य है ही नहीं, तो सके कहने का कोई महत्त्व नहीं होगा।

इसी प्रकार जो शिक्षा की उपयोगिता को समझता हुआ भी उसके अनुकूल म नहीं करता, वह स्वयं अपने लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए खतरनाक । उसका संग खतरे से खाली नहीं है। उसकी उपस्थिति देश और समाज के र भावी अमंगल की सूचक है। शिक्षा में असीम परिवेक्षण-शक्ति है। यह सूक्ष्म सूक्ष्म वस्तु के मर्म को समझ लेती है। यह विश्वबन्धुत्व की भावनाओं को दृढ़ ती है। यह हमें सिखाती है कि यह सारा संसार एक ही पिता के तप का फल चराचर के सम्पूर्ण जीवों में उसी की आत्मा के दर्शन होते हैं। आत्मा और रमात्मा एक है, इस गूढ़ रहस्य की खोज हमारी इस सर्वगुण-उजागरी शिक्षा द्वारा ही की गई है।

संसार के किसी भी अनुभवी गणितज्ञ से पूछिये कि एक और एक कितने हैं? वह निःसंकोच उत्तर देगा कि एक और एक दो होते हैं। लेकिन हमारी चीन शिक्षा के बल पर फली-फूली हमारी तत्त्वविद्या कहती है कि एक और एक, होता है। सुनकर आश्चर्य होता है, लेकिन समझ लेने पर आनन्द का पारावार रहता।

वस्तुतः ईश्वर और हममें कोई मौलिक अन्तर नहीं है, केवल माया और मोह र्दा हमारी आंखों पर छा जाने के कारण हम उसे नहीं देख सकते। यदि हम देखने की चेष्टा भी करते हैं तो मसाले के दूकान की तरह इस संसार में हमें एक एक की बहुत शक्लें दिखाई देती हैं। परन्तु कपट की आंखें मूंद जाने पर की तस्वीर सामने आ जाती है। इस वास्तविक शिक्षा के अर्थ को अच्छी समझ लेने पर कभी कोई किसी का अहित नहीं कर सकता।

यमुना के सुरम्य तट पर एक दिन कन्हैया की सघन छाया के नीचे [illegible] य बैठे हुए थे। प्रेम-प्रसंग चल रहा था। [illegible] रहे थे। गाने वाला स्वयं तन्मय था। [illegible] पर छा रहा था। [illegible] दोनों हाथ [illegible] की आंखों पर रख दिये। [illegible]

राधा को जवाब देने का औसान तो नहीं आया, लेकिन उसके हा‹ जाने में ही ढीले पड़ गये। फिर मुस्कराती हुई माधव की ओर मुड़ कर माधव तुम मुझे कैसा प्रेम करते हो ?

राधा ! प्रेम कैसा ? मैं तो यह समझता हूं कि तेरे और मेरे अन्तर नहीं। बात यहीं पर समाप्त हुई। कृष्ण अपने अलमस्त ग्वालों को को साथ लिए जंगल की ओर चल पड़े। फिर बहुत रात चली जाने पर वे ओर लौटे।

राधा को विनोद सूझा, झट अपने कमरे के फाटक बन्द कर दिये। .. दरवाजा खटखटाया।

"कौन है" राधा ने भीतर से पूछा।

"मैं हू राधा" ! माधव ने धीरे से कहा।

आप चाहे जो हों, यहां से शीघ्र चले जाइए, "मैं" के लिए यहां कोई नहीं है। राधा ने अनुशासन के स्वर में कहा। फटकार खाकर एक बार माधव चौंके, लेकिन चतुर थे न, शीघ्र बात को ताड़ गये और फिर हिम्मत करके खटखटाने लगे। कौन है ? भीतर से वही पूर्व परिचित ध्वनि आई।

'तू है" कृष्ण ने उत्तर दिया।

दरवाजा खुला और कृष्ण यह कहते हुए प्रविष्ट हुए, "राधा ! मैं स गलती पर था"।

यह साधारण सी घटना है। लेकिन इसमें जीवन का ध्रुव सत्य छिपा है मनुष्य का अहंभाव जब तक नहीं छूटता, तब तक दिव्य ज्योति के दर्शन होते। तू और मैं सर्वनाम का भेद मिट जाने पर ही आत्मा ऊँची उठती है शिक्षा की सतत साधना करने से ही यह गति प्राप्त होती है, पहले नहीं। दृष्टि व्यापक हो जाती है और मनुष्य विश्व के अणु-अणु में परमात्मा को देखने लग जाता है।

इन्हीं से मिलते-जुलते भावों को महात्मा कबीर ने इन शब्दों में दुहराया है।

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

ऐसे ही विश्वजनीनता के भाव तुलसी बाबा के शब्दों से टपक रहा है।

सिया राम मय सब जग जानी।
करूं प्रणाम जोरि युग पानी॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊंचे स्तरपर पहुंचे हुए सब लोगों की एक राय है कि शिक्षा दृष्टि-सीमा के क्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत बना देती है।

आज हमारा यह दुर्भाग्य है कि हम शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए हैं। यहां शिक्षित कहे जानेवाले लोगों की संख्या केवल दस प्रतिशत ही है। देश का अधिकांश जन-समूह अशिक्षित है। शिक्षा-विहीन होने के कारण यहां के ८० प्रतिशत लोग मूक हैं। उनकी आवाज उनके दुःख-दर्द के भाव हम तक नहीं पहुंच सकते। यह हमारे लिए लज्जा की बात है और जो शिक्षित हैं उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क में आकर अपनी सभ्यता, वेश-भूषा, रहन-सहन और संस्कृति को ठुकरा चुके हैं। ऐसी अवस्था में हम उनसे क्या आशा कर सकते हैं कि वे हमारे उत्थान के लिए भी कुछ करेंगे ?

हमें सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का है कि हमारी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति विदेशी वस्तुओं से की जाती है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विदेशीयता आ गई है। हमारे देश में शिक्षा मातृ-भाषा द्वारा नहीं दी जाती। अंग्रेजी हमारी शिक्षा की माध्यम बनी हुई है। यह बड़ा दोष है। भाषा अपने देश की संस्कृति और सभ्यता की द्योतक होती है। हमारी जातीयता और राष्ट्रीयता को कुचलने में अंग्रेजी ने हलाहल विष से भरे इन्जेक्शन का काम किया है। यह बरबस हमपर लाद दी गई है।

यह एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है कि विजेता अपने पर [illegible] को स्वाधिकार के विकट बन्धनों में जकड़ने के लिए राष्ट्रीय [illegible] और [illegible] में [illegible] और अवरोध उत्पन्न करने की चेष्टा करता है। यही नियम [illegible] पर भी लागू हुआ। जब-जब जिस जाति ने भारत के शासन-सूत्र को अपने हाथ में लिया, तब-तब उस जाति ने अपनी अंगीकृत भाषा का ही प्रचार प्रसार करने का उद्योग किया।

मुसलमानों ने अपने शासन-काल में [illegible] के प्रचार करने में किसी प्रकार की कमी नहीं उठा रखी। [illegible] लेकिन [illegible] अपनेपन का अभिमान था। [illegible] संस्कृति को नहीं छोड़ा। इतिहास इस बात का [illegible] और [illegible] के लिए मर मिटे थे। [illegible] परतन्त्र होते हुए भी [illegible]

अंग्रेजों के शासन-काल के [illegible]

और आत्म-सम्मान् का भाव एक साथ नष्ट हो गया। भारतीय रीति-नी भारतीय रहन-सहन और भारतीय वेश-भूषा से मुंह मोड़ लिया गया। म को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा, फलतः जातीयता के भाव नष्ट हो गये थे सम्पूर्ण देश अंग्रेजों की आत्मिक गुलामी के प्रबल बन्धनों में जकड़ा गया वस्तुतः भारत के नैतिक-पतन की यह पराकाष्ठा थी।

परन्तु यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रही। थोड़े ही दिनों में अंग्रेज सभ्यता का घिनौना रूप लोगों के सामने प्रकट हो गया। जिसको उन्होंने बहुमूल रत्न समझा था, वह एक कृत्रिम पालिश चढ़ा कांच का टुकड़ा निकला। बेईमान के घोड़े मैदान में आकर थक जाते हैं। बनावट परीक्षा-काल में पानी-पानी हो जाती है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है:—

सचाई छिप नहीं सकती, बनावट के उसूलों से।
सुगन्धी आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥

भारत के सौभाग्य से पुनः राष्ट्रीयता के भाव लोगों में जाग्रत हुए, अपनी गलती का उन्हें बोध हुआ। दुनिया के अन्य राष्ट्रों में अपना दर्जा हीन समझ कर उन्हें हार्दिक आत्म-ग्लानि हुई और वे एक साथ अपनी देशीयता की ओर झुक पड़े। इसी के फलस्वरूप आज मातृभाषा हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की मधुर गूंज चारों ओर सुनाई पड़ रही है, देशीयता को नये सिरे से अपनाया जा रहा है। खान-पान, रहन-सहन और वेश-भूषा में भारतीयता आ रही है। विदेशीयता का गहला रंग प्रायः धुल चुका है। भावी भारत के लिए यह शुभ लक्षण है।

हमें केवल इतने ही से सन्तोष नहीं करना चाहिए। जहां तक हो सके, हमें अति शीघ्र इस अंग्रेजी शिक्षा को बदलना होगा और साथ ही हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के पोषक ऐसे साहित्य को प्रोत्साहन देना होगा, जो हमारे नवयुवकों में आत्म-संयम, स्वावलम्बन और निर्भयता का विकास करे, जिससे वे साधारण रहन-सहन में ही ऊँचे से ऊँचे विचारों को प्राप्त कर सकें।

स्वदेशानुराग के भावों को दृढ़ करने का एक मात्र साधन मातृभाषा ही है। अतः इसके अपनाने से ही हमारे आज के विद्यार्थी, जो कल के सुयोग्य नागरिक होंगे, शीघ्र ही अपने कर्तव्य की पहिचान कर देश की उन्नति में लग जायेंगे। ऐसा होने पर हमारे देश में भाषा-ऐक्य, विचार-ऐक्य, तथा उद्देश्य-ऐक्य होने में तनिक भी देर नहीं लगेगी। सफलता की उज्ज्वल रश्मियों का शुभ्र आलोक इसी से उत्पन्न होगा। इति।

प्राचीन और आधुनिक संस्कृति

ले०—पण्डित नारायण दत्त शास्त्री 'प्रभाकर'
अध्यापक—स्टेट मिडिल स्कूल, तारानगर

आज के इस भौतिक चकाचौंध से पूर्ण विशृङ्खल युग में पुरुष वर्ग के मस्तिष्क पर कैसी मादकता छाई हुई है, उसके हृदय पटल पर कैसे कुसंस्कार जमे हुए हैं, यह विचार करने की नितान्त आवश्यकता है। कहने को तो संसार में 'प्रगतिवाद' चल रहा है, परन्तु हम तो उसे 'दुर्गतिवाद' के नाम से पुकारेंगे। जिसमें शोषण की प्रवृत्ति को मुख्य स्थान मिलता हो, अन्याय-अत्याचार को प्रोत्साहन मिलता हो, ऐन्द्रियिक कामना को सच्चा सुख समझा जाता हो; सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, एवं शौच के पवित्र आदर्शों को पूर्वजों के सड़ियल दिमाग की उपज, एवं हिन्दू-संस्कृति की घृणित व्यवस्था कहा जाता हो, क्या उसे हम 'प्रगतिवाद' कह सकते हैं? प्रगतिवाद का यथार्थ अभिप्राय तो यही है, कि सुख एवं शान्ति के स्थापनपूर्वक उन्नति की जाय। परन्तु अपने जीवन में एक नवीन एवं स्थायी सुख को देने वाले 'अध्यात्मवाद' को भुला कर, उस जीवन की ओर जाना, जिसमें सुख और शान्ति का नाम नहीं हो, केवल भ्रान्ति और कामुकता का ही सम्बन्ध हो, क्या प्रगति है? वस्तुतः इसी 'दुर्गतिवाद' के फेर में पड़कर आज का हतबुद्धि मानव भौतिक चमत्कारों को सच्चा मान बैठा है।

यह समय का प्रभाव है, या मानव-प्रकृति की कृपा है, कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता। इस विषय में एक प्राचीन श्लोक मिलता है यथा:—

"कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो माभूद्राजा कालस्य कारणम्॥"

हमारे सिद्धान्त में यह श्लोक ठीक प्रतीत होता है। मानव के मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं, उन्हें ही संसार के आगे रखने के लिए, पूर्ण रूप देने के लिए वह अनवरत प्रयत्न करता है। इसके लिए वह अपना दल बनाता है और समाज को अपने अनुकूल बनाने की नितान्त चेष्टा करता है। अस्तु।

अब हमें प्राचीन और आधुनिक संस्कृतियों पर तुलनात्मक विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। सर्वप्रथम आधुनिकता पर विचार करना है

चातुर्वर्ण्यः

वर्ण चार होते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रि, वैश्य एवं शूद्र। वर्णव्यवस्था अनादि है। भगवान् ने गीता में कहा है :—

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।"

ब्राह्मण सत्वगुण प्रधान, क्षत्रिय सत्वरजोमय, वैश्य रजस्तमोमय, एवं शूद्र तम-प्रधान होते हैं। प्राचीन कालमें इस वर्ण-व्यवस्था का बड़ा आदर था। ब्राह्मण सृष्टि के गुरु माने जाते थे। भगवान मनुजी लिखते हैं:—

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"

ब्राह्मणके मुख्यकर्म, अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान एवं प्रतिग्रह—ये छ हैं। उस समय के ब्राह्मण संग्रह-प्रिय नहीं होते थे।

वे संग्रह को हीन दृष्टि से देखते थे। उनका आदर समस्त भूमण्डल में हुआ करता था। उनमें से अधिकांश शिलोञ्छ वृत्ति से जीवन यापन किया करते थे। उस समय के ब्राह्मण प्रकाण्ड विद्वान् हुआ करते थे। ब्राह्मण की जीविका शुद्ध होती थी। यथाः—

"न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मण जीविकाम्॥" (मनुः ४।११)

क्षत्रिय के कर्म निम्न लिखित हैं—प्रजारक्षण, यजन, अध्ययन, दान, एवं विषयों में अप्रसक्ति। उस समय के राजा लोग स्वेच्छाचारी नहीं हुआ करते थे। वैदिक मर्य्यादाओं का उल्लङ्घन नहीं किया करते थे। राजधर्म से च्युत नहीं होते थे। उनके लिए धर्मशास्त्रों की सबसे बड़ी व्यवस्था यह थी कि, निरपराध को दण्ड एवं अपराधी को मुक्ति कभी न दो। यथाः—

"अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति, नरकं चैव गच्छति।"

उस समय के क्षत्रिय प्रजा-पालन एवं गोरक्षा के लिए अपने प्राणों तक न्योछावर कर दिया करते थे।

वैश्य के पशुरक्षा, दान, यजन, अध्ययन, वणिक्पथ (व्यापार) और कुसीद (ब्याज-बट्टा)—ये कर्म हैं। उस समय इन्हीं के अनुसार वैश्य अपनी जीवन-लीला यापन किया करते थे।

तीनों वर्णों की सेवा करना, यह एक कर्म शूद्र का था और शूद्र इसी में अपना महत्त्व समझता था। प्राचीन काल से यह व्यवस्था चलती आ रही है, इसी व्यवस्था से भारतवर्ष में पूर्ण सुख और शान्ति थी।

परन्तु आज इसके विपरीत हो रहा है। ब्राह्मणों के प्रतिग्रह को छोड़कर सब कर्म लुप्तप्राय हो गए हैं। आज के ब्राह्मण सर्वथा कर्तव्यभ्रष्ट हो गए हैं। जो विद्वान् एवं कर्तव्यनिष्ठ हैं, उनकी संख्या दाल में नमक के समान है। आज के ब्राह्मण और उस समय के ब्राह्मणों की तुलना करने के विचार-मात्र से ही रोमाञ्च हो उठता है। आज के ब्राह्मणों में गुणों के स्थान को अवगुणों ने ग्रहण कर लिया है। याचन आदि कौन से ऐसे घृणित कार्य हैं, जिन्हें आजका ब्राह्मण नहीं करता है। इन ब्राह्मणों के लिए शुद्ध सङ्कल्प तक बोलना कठिन हो गया है, जो कुल-पति के आसन पर सगर्व बैठा करते थे।

इधर क्षत्रियों का भी यही हाल है। वे भी, अपने प्राचीन कर्मों को छोड़ बैठे हैं। प्रजाका शोषण करना और आनन्द मनाना उनका मुख्य कर्म हो गया है। वेद मन्त्रों के स्थान पर उनका उच्च प्रासाद वेश्याओं के मधुर स्वर और तबले के नाद से गूंजता है। हवन के सुगन्ध के स्थान पर सुरादेवी का परिमल हो उनको निद्रा को दूर कर रहा है। प्रजा मरे या डूबे, कोई परवाह नहीं, उन्हें आनन्द मनाने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वे आनन्द मनायंगे! मनायगे!

वैश्य तो सबसे ही गए बीते हो गये हैं। ऐसा कौन-सा घृणित व्यापार जिसे आज का वैश्य नहीं करता हो। गरीबों का खून चूस-चूस कर मोटा मोटी तोंद फैलाए गद्दोंपर मसनदों के सहारे पड़ा रहना उनका मुख्य कर्तव्य-सा हो गया है।

शूद्रका परिचर्यात्मक कार्य समाप्तप्राय हो गया। हो भी क्यों नहीं! बेचारे परिचर्या करते-करते भी अधोगति को ही प्राप्त हो रहे हैं। आज चिर दलित मन सारी व्यवस्था को उलट देने के लिए छटपटा रहा है। शूद्र तो इन में ऐसे भी हो गए हैं, जो त्रिवर्ग को शिक्षा देने से भी बाज नहीं आते।

अरे! आज के ये प्रगतिवादी तो इस व्यवस्था को नष्ट करने की ठान रहे हैं। परन्तु याद रहना चाहिए कि इसका नाश होने पर अनर्थ होगा।

चतुराश्रम

आयु का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। मानव २५ वर्ष तक गुरुकुल में निवास हुआ, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ, गुरुमुख से समस्त शास्त्रों का अध्ययन हुआ तपश्चर्या करता था। उसके मस्तक पर अलौकिक तेज टपका करता था। २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम का पालन करना होता था। उसमें अतिथि ईश्वराराधना, धर्मप्रजोत्पत्ति, एवं माता-पिता की सेवा ये मुख्य कार्य होते ५० से ७५ वर्ष की अवस्था तक घर एवं जगती के समस्त झंझटों को छोड़ कर में तपस्या करनी होती थी। ७५ से १०० वर्ष की अवस्था में संन्यास ग्रहण संसार में भ्रमण करना पड़ता था तथा तीनों आश्रमों को शिक्षा देनी पड़ती थी परन्तु आज इसके विपरीत हो रहा है। ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ का तो अस्तित्व संसार से उठ गया मालूम होता है। गृहस्थ एवं संन्यास-आश्रम विकृत अवस्था दिखाई देते हैं। आज के नवयुवक के गाल पिचके हुए, चेहरा श्रीहीन, एवं शरीर निर्बल मालूम होता है। उसमें आत्मबल का अंश भी नहीं है। इधर गृह अपने कर्तव्य से च्युत हो गया है। अतिथि को देखते ही उसका गृहद्वार बन्द हो जाता है। अतिथि-सेवा तो फिर करेंगे ही क्या! संन्यासियों की ही हम क्या कह सकते हैं। जटा रखना, राख लगाना एवं चिमटा रखना ही उनका प्रधान लक्ष्य हो गया है।

पिता-पुत्र

पिता-पुत्रका मधुर एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध जैसा प्राचीन काल में था, वैसा आज नहीं है। पहले यह सिद्धान्त था।

"लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
सम्प्राप्ते षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥"

पहले दो नियमों का यदि सर्वांश में नहीं, तो कुछ अंश में पालन अवश्य होता है, परन्तु पिछले नियम की जगह तो बिलकुल उलटा हो गया है। पुत्र के समर्थ होते ही, या संसार के अनुभव करने योग्य होते ही, माता-पिता का अनुचित दबाव होने लगता है। माता-पिता को धन प्रिय लगने लग गया है। आज के माँ-बाप में स्नेह-भावना नहीं है। स्वार्थ-भावना है। अर्थोपार्जन में सब से चतुर लड़का उन्हें अधिक प्रिय है। दूसरा पुत्र चाहे, उसमें इतर गुण कितने ही क्यों न हों उनके प्रेम का पात्र नहीं हो सकता। इधर पुत्र निरंकुश हो गया है, वह अपनी स्वातन्त्र्य-वृत्ति पर माता-पिता का शासन नहीं चाहता। वह अपने अधिकारों के लिए लड़ता है। माता-पिता की सेवा करता है, तो भी स्वार्थ-भाव

से या लोभ से। जिस प्रकार माँ-बाप के चित्त में विकार आया है, उसी . उसके चित्त में भी। माँ-बाप के प्रति पुत्र की पूज्य भावना नहीं है। ... भावुकता पर थोड़ा सा आघात होते ही, उसे माँ-बाप जहर से कड़वे लगने जाते हैं। आज दोनों बराबर हैं। परन्तु प्राचीन काल के दशरथ और श्रवण इतिहास के स्मरण होते ही ठंडी साँसें निकलने लग जाती हैं।

गुरु-शिष्य

प्राचीन गुरु-शिष्य का सम्बन्ध आज कल्पना-सा प्रतीत होता है। काल के गुरु-शिष्यों को विद्या पढ़ाया करते थे, उसका पालन-पोषण करते थे, उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध किया करते थे, एवं उसके कल्याण समस्त भार अपने ऊपर ले लेते थे। वे शिष्य को सारी गुप्त निधि सौंप देते उस समय का शिष्य भी गुरु को सर्वस्व अर्पण कर दिया करता था। अपनी हुई भिक्षा में से भी एक दाना उठाकर खाना उसके लिए पाप था। गुरु उस उसकी कड़ी परीक्षा लिया करते थे, परन्तु वह सफल हुआ करता था। गुरु [illegible] भी माँगता था, उसे देने में शिष्य जरा भी नहीं हिचकिचाता था। आरुणि आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं।

इधर आज का गुरु लोलुप, स्वार्थी एवं शिष्य से अनुचित लाभ उठाने हो गया है। वह शिष्य को पढ़ाना नहीं चाहता, मुफ्त में ही तनख्वाह चाहता है। अपने छात्र को विश्व में उन्नतिशील देखने के लिए आज का लालायित नहीं है। केवल पढ़ाने की रस्म पूरी करता है। आज का शिष्य को भाड़े का टट्टू समझता है। वह उसे पूज्य दृष्टि से नहीं देखता, वह उसे अप नौकर समझता है। उसके लिए उसके हृदय में श्रद्धा नहीं है। केवल परिपा मात्र को निभाने के लिए वह बाह्य सभ्यता का प्रदर्शन करता है। प्राचीन काल जब शिष्य दण्डमेखलाधारी होकर गुरु के सामने विनम्र भाव से साञ्जलि वि ग्रहण किया करता था, वहाँ आज का शिष्य हैट-बूट से सुसज्जित होकर अकड़ क गुरु के सामने बैठता है और गुरु के छिद्रान्वेषण में ही तत्पर रहता है।

पति-पत्नी

प्राचीन समय में 'विवाह' एक अटूट सम्बन्ध एवं पवित्र संस्कार माना जा था। स्त्री-पति की अर्धाङ्गिनी समझी जाती थी। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" पुरुष के सामने यह आदर्श था। उधर 'पतिसेवा', 'सतीत्वधर्म' ह

सावित्री, सीता, मदालसा के उदाहरण हमारे सामने हैं। परन्तु आज नारी को अपना गुलाम समझता है। वह उसके ऊपर अनुचित शासन कर अपने व्यक्तित्व से उसका मुँह बन्द रखता है। एकपत्नीव्रत के आदर्श सर्वथा भूल चुका है। इधर आज की नारी की जिह्वा खुलना चाहती है। शताब्दियों से प्रताड़ित नारी विद्रोह करना चाहती है। वह पुरुष को ' समझती है, अपना क्रूर शासक समझती है। आज नारी को पति-से सन्तोष नहीं मिलता। वह आपातरमणीय स्वातन्त्र्य वातावरण में श्वास चाहती है, पतीव्रत के आदर्श को रसातल में गाड़ना चाहती है तथा पुरुष बराबरी करना चाहती है। आज गृहस्थी नरक हो गयी है, इसमें पति-पत्नी पारस्परिक द्वन्द्व चलता है। नारी एक पहेली हो गई है। आज के इस वाता में सुधार की आवश्यकता है। परन्तु प्राचीन आदर्शों का सर्वथा परित्याग पुरुष के सामाजिक जीवन को सर्वथा विषमय बना देगा, इसमें कुछ भी नहीं है।

आचार

प्राचीन भारत में आचार पर कितना बल दिया जाता था, यह किसी छिपा नहीं है। 'ब्राह्मे मुहूर्ते मुदुध्येत' यह उस समय का प्रधान नारा था। समय के शान्त वातावरण में मानव के मस्तिष्क को एक विशेष प्रकार की शान्ति मिलती थी, सारे दिनभर कार्य करने की क्षमता प्रदान करती थी। उसके बाद शौच, दन्तधावन, स्नान, एवं सन्ध्योपासन की व्यवस्था थी। तदनन्तर देवाराधना, बलि-वैश्वदेव, एवं अग्निहोत्र की व्यवस्था थी। अग्निहोत्र के पवित्र धूम से समस्त गृह पवित्र हो जाता था, घरका वायुमण्डल विशेष प्रकार की गन्ध से परिपूर्ण हो जाता था। इसके बाद अतिथि पूजाकर बाल-वृद्धों को जिमाने के पीछे गृहस्थ को भोजन करने की आज्ञा मिलती थी। इसके बाद वह धनोपार्जन की व्यवस्था करता था। फिर सायंकाल वही स्नान, सन्ध्या, ईश-प्रार्थना आदि करनी होती थी। रात्रि में ज्ञान-चर्चा भी की जाती थी। इस प्रकार प्राचीन व्यवस्था के अनुसार जीवन-यापन करनेवाले पुरुष के दोनों लोक सुधर जाते थे। इधर इस समय इस भौतिकवादके फेर में पड़कर मनुष्य झूठे धन्धों में बुरी तरह फंसा हुआ है, जिससे पारलौकिक कृत्यों की ओर अत्यधिक उदासीन हो चुका है। इसी प्रकार ऐहलौकिक प्राचीन धर्म को भी हेय दृष्टि से देखने लग गया है। बीड़ी, सिगरेट, भांग, गांजा, चरस, अफीम आदि जीवनीय शक्ति का ह्रास कर देनेवाले पदार्थों का उपभोग

करने लग गया है। भोजन करने में उसे किसी प्रकार का विचार नहीं उच्छिष्ट, अनुच्छिष्ट, दूषित, अपवित्र कैसा भी क्यों न हो, यदि उसके गले में अटकता है, तो उसे खाने में कोई आपत्ति नहीं। भगवान् ने गीता में कहा है बिना अग्निहोत्र आदि किए भोजन करता है, वह राक्षस है। कान्ति और [illegible] ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य हो गया है। तरस है आज के भोले [illegible] दुर्बुद्धि पर !

इस प्रकार ऊपर लिखित सूक्ष्म विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है प्राचीन संस्कृति के पालन में ही मानव का वास्तविक कल्याण निहित है। भौतिक चमत्कारों से मानव को आपातरमणीय सुख मिलता हो, परन्तु परिणाम विष से भी भयङ्कर सिद्ध होता है। पाश्चात्य देशीयों का जीवन प्रकार अशान्तिपूर्ण है, यह किसी विचारशील से छिपा नहीं है। आधुनिक मानव के अधोपतन में सबसे बड़ी हेतु है। अतः हमें प्राचीन संस्कृति के प्रयत्नशील होना चाहिए।

कालिदास और प्रकृति

लेखक :—
पं० नारायणदत्त शास्त्रीय भारद्वाज
आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न, हिन्दी प्रभाकर, राजगढ़ (बीकानेर)

अस्पृष्टदोषा नलिनीव [illegible]
हारावलीव [illegible] गुणौघैः ।
प्रियाङ्[illegible] विमर्द[illegible]
न कालिदासादपरस्य [illegible] ॥
(श्री कृष्ण कवि)

संस्कृत-साहित्य में प्रकृति-प्रेम का प्राधान्य आदिकवि से चला आ[illegible] हमारे आदि कवि वाल्मीकि के हृदय में जो अनुकम्पा थी, वह [illegible] भवभूति के हृदय को प्लावित कर [illegible] [illegible] सुन्दर [illegible]। [illegible] वाल्मीकि का प्रकृति से पूर्ण अनुराग था। बिना [illegible] के ऐसे सुन्दर [illegible]

का भी यथेष्ट चित्रण किया है। कविकुल-शिरोमणि कालिदास ने अपने का चमत्कार से पहले-पहल समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की। वस्तुतः संस्कृत-सा का सौष्ठव और सौरभ बहुत कुछ इन्हीं के ग्रन्थों पर निर्भर है। यह कहना चित न होगा कि यदि संस्कृत-साहित्य से कालिदास को हटा दिया जाय, तो अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के रहते हुए भी सुरभारती की लोकप्रियता में अ कमी आ जाएगी।

विश्व के विशाल साहित्य में शेक्सपियर को विद्वान अन्तर्जगत् का सर्व साहित्यकार समझते हैं, और कालिदास को बाह्य जगत् का। बाह्य जगत् चित्रण में प्रकृति के वर्णन में कालिदास ने जो मनोरम काव्य-रचना की है वह साहित्य-जगत् में अपूर्व है। इनके प्रकृति-वर्णन में इतनी सजीवता है, इतनी रमणीयता है, तथा इतनी भव्यता और स्वाभाविकता है, कि साहित्यिकों के मन हठात् आकृष्ट हो जाते हैं। उनके प्रकृति-प्रेम का अनुमान मेघदूत के एक ही श्लोक से लगाया जा सकता है।—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्र प्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥१॥

इस श्लोक में जो वर्णन है, वह शकुन्तला जैसी तापस बाला का नहीं है; अपितु धनपति कुबेर की उस अलकापुरी का वर्णन है, जहाँ की महि रत्नखचित है, जहाँ गगनचुम्बिनी प्रासादमालायें श्रेणीबद्ध खड़ी हैं, स्वर्ण सिकता है। जहाँ के यक्ष अपनी अलबेली स्त्रियों को लेकर स्फटिक भवनों पर बैठते हैं। अमर-प्रार्थित यक्षकन्याएं दिन-रात अपनी मुट्ठियों में रत्न लेकर उसकी सुनहरी बालू में डाल कर छिपाने-ढूंढ़ने का खेल खेला करती हैं। स्निग्ध रजनी में रत्नप्रदीप जला करते हैं, जहाँ के सरोवर की सीढ़ियों पर नीलम जड़ा हुआ है। सरोवर में चिकने वैदूर्यमणि की नालवाले बहुत से कमल खिल रहे हैं। जहाँ, रङ्ग-बिरंगे वस्त्र, नेत्रोन्मादिनी मधुर-मदिरा, कोमल पल्लव, सुरभित सुमन, विविध प्रकार के भूषण, चरणरञ्जक अलक्त आदि, कन्याओं के शृङ्गार की सभी वस्तुएँ कल्पवृक्ष से अनायास प्राप्त हो जाती हैं। इतना सब होते हुए भी वहाँ की बालाओं का शृंगार प्रकृति की विभूतियों से होता है, न कि शिलामणियों के टुकड़ों से। यह वर्णन इस बात को सूचित करता है, कि प्रकृति के पुजारी भावुक कवि की दृष्टि को

इन प्राकृतिक पदार्थों में जो सुषमा लक्षित होती है, वह रत्न-मुक्ता-खचित स्वर्ण आभूषणों में नहीं।

इस महाकवि की शकुन्तला मानों साक्षात् प्रकृति की दुलारी कन्या है आरम्भसे ही तपोवनमें पलने वाली शकुन्तला जिस समय आश्रम-तरुओं सींचती हुई हमारे सम्मुख आती है, उस समय आश्रम-तरुओं के प्रति का स्नेह ऐसा मालूम पड़ता है; मानों वे उसके कुटुम्बी हों। आश्रम-वृक्षों की भाँति सेवा करने वाली शकुन्तला का, तपोवन की लताओं के कब स्तवक हुए, उनमें मञ्जरियाँ कब प्रस्फुटित हुईं, इन सब बातों का ध्यान रखने शकुन्तला का अनुपम प्रकृति-प्रेम उस समय विशेष लक्षित होता है, जब महर्षि कण्व द्रवित होकर पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को निर्दिष्ट कर कहते हैं

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः—
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

शकुन्तला के इस प्रकृति-प्रेम का प्रभाव यह होता है कि तपोवन के समस्त जड़ एवं चेतन ऐसे अनुरागी हो जाते हैं कि उसकी विदाई के समय वन-देवताओं ने तथा तरु-लताओं ने दिव्य आभूषण तक उपहारस्वरूप दे डाले।

ऐसा जान पड़ता है, मानों कवि-कुल-गुरु कालिदास की समस्त कृतियों उठान ही प्रकृति के सौन्दर्य-निरीक्षण में उनकी आरम्भिक अवस्थामें रम गया है ऋतुसंहार, जो उनका प्रारम्भिक काव्य माना जाता है, उसमें प्रकृति-वर्णन इतना प्रगल्भ एवं काव्याङ्गपूर्ण है कि परवर्ती कवियों का वर्णन कालिदास की जूठन मालूम पड़ता है। यद्यपि उसमें प्रकृति-वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में आया है तथापि उसका प्रथम श्लोक—

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः ।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये ॥

इस बात का प्रभाव है कि कवि केवल अलङ्कारों के साथ खिलवाड़ करने वाला नहीं है, वरन् प्रकृति का भावुक प्रेमी है। और फिर—

[illegible]
[illegible]
[illegible]

आदि शरद्वर्णन कवि की सूक्ष्म एवं व्यापक दृष्टि का उनके वास्तविक ज्ञा
का प्रमाण है। मनोहर वसन्त के आते ही तो क्या कहना है!

सब वृक्षों में फूल खिल गए हैं, जलमें कमल विकसित हो गए हैं
स्त्रियाँ मतवाली हो गईं, वायुमें सुगन्ध आने लगी, सन्ध्या सुहावनी हो गई
पवन भी—

> आकम्पयन् कुसुमिताः सहकार शाखा
> विस्तारयन् परभृतस्य वचांसि दिक्षु।
> वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
> नीहारपात विगमात्सुभगे वसन्ते॥

यह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है, पर गवाक्षमण्डित कमरेमें बैठकर नह
लिखा गया है, किन्तु मञ्जरित आम्र के उपवन में बैठकर प्रमत्त कोकिल को मधु
कूक सुनकर आनन्द-विभोर होने वाले कविकी लेखनीसे प्रसूत मालूम होता है
इस प्रकार ऋतुसंहार का प्रत्येक पद्य इतना सुन्दर, सरस एवं भव्य है कि जिन्हे
सुनते ही प्रकृति का मोहक सौन्दर्य आँखों के सामने खड़ा हो जाता है।

कुमारसम्भव तो प्रकृतिनटी के ललित लास्य की रङ्गशाला है। प्रथम सर्ग
का हिमालय-वर्णन संस्कृत-साहित्यमें क्या विश्वसाहित्य में बेजोड़ है। मुक्ताभास
हिमराशि-मण्डित शार्दूल जाल अत्यन्त विशाल हिमालय का वर्णन कविने हृदय
खोल कर किया है। देखिए—

> यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
> बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्॥

ऐसा मधुर प्रेममय वर्णन प्रकृति की मनोरम लीलाओं में मुग्ध होकर ही
कवि कर सकता है। इस महाकवि की अनेक विशेषताओं में यह भी एक
विशेषता है कि जहाँ वे प्रकृति के स्वाभाविक चित्रणमें अतीव प्रवीण हैं, वहाँ नव
नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाके सहारे अलौकिक और दिव्य विभूतियों का वर्णन
करने में भी नितान्त निपुण हैं।

जहाँ उन्हें एक ओर विशाल हिमालय का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करने में
अत्यन्त सफलता मिली है, वहाँ दूसरी ओर औषध, प्रस्थपुरी, हिमालयनिवासी
यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, अलका, सुमेरु, गन्दमादनादि के काल्पनिक वर्णन में
भी उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय
हिमालय-वर्णन पढ़ते ही मिल जाता है।

जब संध्या समय पर्वतों के झरनों पर सूर्य की कुंकुमकिरणें पड़ती हैं, तब उनमें इन्द्रधनुष चमकने लग जाता है, पर सन्ध्या समय सूर्य के लटक जाने पर उनमें इन्द्रधनुष नहीं दिखायी देता इसी का वर्णन कवि करता है—

> सौकर्य्यनिकरं मरीचिभि र्दृश्यन्त्यवनतं विलम्बिनि।
> इन्द्रचाप परिवेश शून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी॥

किन्तु झरने में इन्द्रधनुष न दिखायी पड़ने पर भी तालाबों में लटकते हुए सूर्य की समतल कान्ति पड़ने से ऐसा जान पड़ता है, मानों उनके ऊपर सोने का पुल बना हो—

> पश्य पश्चिमदिगन्तलम्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता।
> लम्बया प्रतिमया सरोऽम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम्॥

रूढ़ि का अनुसरण करने वाले कवियों में ऐसी कल्पना जागृत नहीं होती, परन्तु यह कल्पना उस कवि की प्रतीत होती है जो मुग्ध दृष्टि से प्रकृति निरीक्षण कर सब-कुछ भूल गया हो।

मेघदूत तो मानों प्रकृति रमणी की लालित्यपूर्ण चेष्टाओं का आगार है। बाह्य प्रकृति की जो प्रधानता मेघदूत में मिली है वह संस्कृत के और किसी काव्य में नहीं। पूर्व मेघ तो आदि से अन्त तक प्रकृति की एक मधुर झाँकी या प्राचीन भारत भूमि के स्वरूप का ही ध्यान है। जो इस स्वरूप के ध्यान में अपने को भूल कर कभी-कभी मस्त हुआ करता है वह शुक्ल जी के शब्दों में—"घूम-घूम कर भाषण दे या न दे, चन्दा इकट्ठा करे या न करे, देशवासियों की आमदनी का हिसाब लगाए या न लगाए पर है सच्चा देश-प्रेमी।" 'मेघदूत' न वासना की क्रीड़ा है, न कल्पना की विचित्रता है; किन्तु वह है, प्राचीन भारत के सबसे भावुक हृदय की अपनी प्रिय जन्मभूमि की रूपमाधुरी पर सीधी-सादी दृष्टि। 'पूर्वमेघ' के पढ़ते ही कितने मधुर शब्दों में वर्षा की सूचना मिलती है—

> मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
> वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
> गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
> सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥

ग्रीष्म के बाद पहले-पहल वर्षा की बूँदों के पड़ने से गरमी भर तपे हुए पहाड़ी पत्थरों से वाष्प निकलती है, उसका वर्णन देखिए—

कालिदास को पूर्ण कविहृदय मिला था। वर्षा के प्रथम ज
तुरन्त की जोती हुई धरती, उससे प्रेम रखने वाली भोली-भाली
साफ-सुथरे ग्राम चैत्यों, और कथा-कोविद ग्राम-वृन्दों में उन्होंने एक
का माधुर्य अनुभव किया था। वर्षा होते ही वसुन्धरा सोंधी-सोंधी
है, उस समय सरस कृषक बालाएँ कितने स्नेह से अम्बुवाहों के प्रति दे-

"त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभिः क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥"

इस प्रकार मेघदूत अत्यन्त भव्य प्रकृतिवर्णन से भरा पड़ा है।
एक अङ्ग के नहीं वरन् समस्त अङ्गों के वे बड़े सिद्धहस्त हैं। 'मेघदूत'
देखते हैं कि उनका प्रकृतिवर्णन एक ओर तो प्राकृतिक सुन्दरता का चित्र
और दूसरी ओर बाह्यजगत् का अन्तर्जगत् के साथ सम्बन्ध मिलाने वा
उन प्राकृतिक दृश्यों को देखकर केवल कवि के, यक्ष के, या अनुप्राणित
हृदूत भाव ही नहीं वर्णित हैं किन्तु ग्रामवधुओं, पथिकों और विरहियों के
का भी अत्यन्त मनोरम चित्रण है। इतना ही नहीं चातकों, मयूरों और
की उन चेष्टाओं का वर्णन है जिनमें उनकी अन्तरात्मा की छाया स्पष्ट झलकती
जन्तु जगत् की मनोहर चेष्टाओं के चित्रण में कालिदास बड़े सिद्धहस्त हैं।
बाण चढ़ाये हरिण के पीछे दौड़ रहे हैं और वह माथा टेढ़ी करके पीछे नि
हुआ इसलिए कि, कहीं रथ समीप न आ गया हो, चौकड़ी मारता भाग रहा
थक जाने के कारण उसकी साँस फूल रही है और मुँह खुल गया है, इस
अर्धचर्वित कुशा उसके मुंह से गिर रही है और चौकड़ी की तेजी से वह उड़ता
जान पड़ता है—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥

महाकवि जो कुछ लिखते थे वह उनकी वैयक्तिक अनुभूति और निरीक्षण का
परिणाम होता था। शकुन्तला के प्रथम अंक में आश्रम की जिन विशेषताओं
का वर्णन किया गया है, वह मानो अनेक बार देखे हैं। कहीं वृक्षों के नीचे

शुकमुख भ्रष्ट तिन्नी के दाने बिखरे पड़े हैं। कहीं इधर-उधर पड़े हुए पत्थर यह बता रहे हैं कि इन पर अनेक बार हिंगोट के फल कूटे गये हैं। कहीं-कहीं निडर खड़े हुए मृग इस विश्वास से रथ शब्द सुन रहे हैं कि आश्रम में तुम्हें कोई छेड़ेगा नहीं, और कहीं नदी-नालों पर आने-जाने के मार्गों में मुनियों के वल्कलों से टपके हुए जल की रेखायें बनी हुई हैं। इस प्रकार का वर्णन सच्चे सभ्यताप्रेमी कवि ही कर सकते हैं।

महाकवि के वर्णन की यह एक विशेषता है कि यदि उनका वर्णन, दिव्य-पात्रों से और अलौकिक स्थलियों से सम्बद्ध नहीं है, तो उसमें स्वाभाविकता और भौगोलिक सत्यता अवश्य रहती है। 'भारवि' के समान हिमालय में वे मोती का वर्णन नहीं करते। जिस देश, जिस काल, जिस परिस्थिति में उनकी प्रकृति चित्रित होती है, वह उस देश-काल के पूर्ण अनुरूप होती है। रघु के दिग्विजय का वर्णन करते हुए कवि, जिस मार्ग से और जिन-जिन देशों में ले चलता है; और वहां की जो बात उसके वर्णन में आती हैं वे भौगोलिक विचार से पूर्ण वास्तविक हैं। चाहे वह प्राच्य समुद्र के तटस्थ श्यामल ताली का वर्णन करता है, चाहे बङ्गाल के कमल का वर्णन करता है, चाहे महेन्द्राद्रि के नागवल्लीदलों और नारिकेलासव का चित्र खींचता है, चाहे मारीचवनमें परिभ्रान्त हारीत वाले मलयाद्रि की उपत्यका की कथा सुनाता है, चाहे पाण्ड्य देश की ताम्रपर्णी की बात बताता है, चाहे केरल की मुरला नदी के पुलिनस्थ केतकी के पुष्प परागों की गाथा सुनाता है, चाहे भारत के पश्चिमी सीमाप्रान्त के अंगूर से व्याप्त प्रदेश का वृत्तान्त कहता है, चाहे काश्मीर के कुंकुम केसरों की कहानी कहता है, चाहे हिमालय के भोजपत्रों का मर्मर, मृगों की कस्तूरी, सरल और देवदारु के तरु और गङ्गा के शीकर से मिश्रित शीतल अनिल का वर्णन करता है, अथवा लौहित्य नदी पार करने पर कामरूप के अगुरु वृक्षों का वर्णन करता है सब-कुछ भौगोलिक वास्तविकता से युक्त है।

इस भौगोलिक तथ्य के अतिरिक्त महाकवि कालिदास के प्रकृति वर्णन की दूसरी विशेषता यह है कि प्रस्तुत की अमूर्त विशेषताओं और सुषमा-सम्बन्धी विलक्षणताओं के साकार साक्षात्कार के लिए वह प्रकृति के अप्रस्तुत प्रसंगों की निर्बाध सहायता लेता है। शकुन्तला की स्वाभाविक सुषमा की ललित कल्पना को चित्रित करने के लिए वह कहता है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

इसमें शकुन्तला की सहज रूप सम्पत्ति का मूर्त प्रत्यक्षीकरण कराने के सेवार से घिरे हुए कमल और मकलङ्क कलाधर की सहायता ली गई है। भांति शकुन्तला की अभुक्तपूर्व यौवन अभिव्यक्ति के लिए, उसके अछूते यौवन मनोरमता प्रतिपादित करने के लिए कवि अप्रस्तुत की सहायता लेकर कहता है।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥

अनाघ्रात पुष्पादि का वर्णन हमारे सम्मुख उसकी अभुक्तरूप सम्पत्ति एक भव्य और प्रभावशाली चित्र उपस्थित कर देता है। इस चित्र की सहायता से अमूर्त भावना के मूर्त साक्षात्करण में अत्यन्त तीव्रता आ जाती है। हृदय पर उसकी एक मधुर और अमिट छाप पड़ती है।

रमणी सौन्दर्य को देख कर अनेक तरुणों के मन आकृष्ट होते रहते हैं, पर इतना कह देना कि अमुक सुन्दरी को देख कर अमुक युवक का मन मुग्ध हो गया पर्याप्त नहीं। केवल इतने में न तो कोई साहित्यिक रमणीयता जान पड़ती है और न इसका कोई प्रभाव ही पड़ता है। जब उर्वशी का स्वर्गीय सौन्दर्य देख कर पुरुरवा का हृदय मुग्ध हो गया तब उसी का प्रभावशाली वर्णन करते हुए कवि कहता है—

"दुर्वा मनो मे प्रसभं शरीरात् पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती ।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात्सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥

जैसे मृणाल के दो खण्ड कर के एक खण्ड के दूसरे खण्ड से दूर किये जाने पर भी उसमें से निकलता हुआ सूत्र दोनों का सम्बन्ध बनाए रखता है; इसी प्रकार उर्वशी के चले जाने पर भी महाराज की आंखें और अन्तर्वृत्तियां उसी ओर लगी हैं। इसी प्रकार विरहिणी-यक्षिणी की मलिन मूर्तिका साक्षात्कार कराने के हेतु कवि ने उसे शिशिरमथिता पद्मिनी के तुल्य कहा है। आगे उसी का वर्णन करते हुए कविकुल कमल दिवाकर कहते हैं—

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्तिलम्बालकत्वा—
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥

यहाँ भी अप्रस्तुत चन्द्र यह सूचित करता है कि सहज सुन्दर यक्षिणी मुख वियोग के बादलों से कान्तिहीन हो गया है। इस रीति से महाकवि काव्यों में अप्रस्तुत रूप में भी प्रकृति का अत्यन्त प्रभाव शील और ... हृदयोद्‌यापक वर्णन पग-पग पर भरा पड़ा है॥

कवि की दृष्टि में मानव के चारों ओर फैली हुई विशाल प्रकृति ... तारक-भासित अम्बर, अगाध समुद्र, विशाल वन-लता, तरु, फल, पुष्प, ... नदी, पशु-पक्षी; तथा प्रकृति के अनन्त प्रदर्शन केवल जड़ या बुद्धि और ... से हीन साधारण-वस्तुएँ नहीं हैं, वरन् उसकी भावुक चक्षुओं में और ... कल्पनाओं में वे सभी चेतन जान पड़ते हैं। वे सभी भावनाशील हैं; और मा... जीवन के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति है। मानव पीड़ा से वे व्यथित होते मानव सुख से वे सुखी हैं। यह परम्परा महर्षि वाल्मीकि से चली आ रही है सीता के वियोग में राम पशु पक्षी लता वृक्षों से सीता का पता पूछते हैं। ... के मानस में भी राम कहते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर स्येनी।
तुम्ह देखी? सीता मृगनैनी॥

यह वियोग धन्य है जिसमें जड़ चेतन का साधारणीकरण हो जाता है इसके भव्य और विशद उदाहरण एक नहीं महाकवि के काव्य में अनेक हैं। विक्रमो र्वशीय के चतुर्थ अङ्क में उर्वशी के वियोग में विलाप करते हुए पुरूरवा को देख ... सारी प्रकृति सहानुभूति से आकुल हो उठती है। पुरूरवा को भी सारी ... सजीव और मानव सुषमा में व्याप्त दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण प्रकृति को अपने प्रति सहानुभूतियुक्त और सद्य देखकर ही पुरूरवा के द्वारा कवि अपने हृदय के भाव उनके प्रति व्यक्त करता है। इसी भाँति शकुन्तला भी मानो प्रकृति सुन्दरी की नैसर्गिक शोभामयी वनदेवी की दुलारी पुत्री है। तपोवन के पशुपक्षियों तथा मृगों के प्रति उसका हृदय वात्सल्यस्नेह से आवृत है। नैसर्गिक वन्यसुषमा से उसके काव्य-कलेवर के अणु-अणु निर्मित और प्रतिपादित हैं। कण्व के कथनानुसार जो, आश्रम वृक्षों को बिना सींचे जल पीना भी पसन्द नहीं करती, उस शकुन्तला की विदाई के समय यदि समस्त तपोवन विरहाकुल हो उठता है तो क्या आश्चर्य? धर्मपिता कण्व और अन्य तपस्वियों की व्याकुलता तो ठीक ही है, पर जड़ और मूक प्रकृति की शोक कातरता और व्यथा व्याकुलता उसी कवि के अन्तःकरण के साथ स्पन्दित हो सकती है जिसकी हृत्तन्त्री के तार प्रकृति के व्यापारों से बज उठा करते हैं।

महाकवि के द्वारा जड़ प्रकृति का चेतनीकरण 'मेघदूत' में आदि तक प्रतिविम्बित दिखाई पड़ता है। यक्ष, जड़ मेघ को अपना दूत बनाक प्रियतमा के पास भेजता है। मेघ की सेवा मार्ग में बकपंक्ति करेगी। f पाथेय लिए मार्ग में राजहंस साथ देंगे। जाने के समय 'रामगिरि' भ बहायेगा। मार्ग में सुन्दर रेखा मिलेगी। मयूर स्वागत करेंगे। वि पहुंचने पर कामुकेच्छा पूर्ण होगी; और वेत्रवती के चञ्चल तरङ्ग भ्रुकुटियो मुख का वह चुम्बन करेगा। तथा प्रकृति चेतन मानव के समान आचरण क

जहाँ एक ओर कवि मनुष्य की बाह्य सुन्दरता की प्रभावशील और अनुभूति के लिए प्रकृति के मनोरम और ललित उपादानों की सहायता , वहीं दूसरी प्राकृतिक रमणीयता की प्रभावशीलता तथा तीव्रता बढ़ाने के प्रकृति में भी मानव सौन्दर्य को आरोप करके अप्रस्तुत रूप में मानवीय तथा भावाभिव्यक्तिकी सहायता लेता है—

वीचिक्षोभस्तनित - विहग - श्रेणिकाञ्ची गुणा या
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु॥

महाकवि के सम्मुख सुरतग्लानि को दूर करने वाला शिप्रानिल प्रार्थना चाटुकार प्रियतम हैं। इसी प्रकार गम्भीरा नदी का चटुल शफरोद्वर्त उसके कटाक्ष हैं। अतः यक्ष मेघ से कहता है—

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधो नितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः॥

इस श्लोक से हमें यह पता चलता है कि जिस भाँति एक विलास कामकला-निपुण नवयुवक के हृदय में 'विवृत्त जघना' रमणी को देखकर उ प्रति आकर्षण होता है, उसी भाँति वर्षाकालीन गम्भीरा नदी की उपयुक्त स छटा देखकर कवि का मन वहां रम गया है; और सब कुछ भूल कर वह उ निहारने में मस्त हो उठता है।

कवि कुलगुरु कालिदास के सभी काव्यों में और विशेषतः 'मेघदूत' इस भाँति के भरे पड़े हैं। अतः चाहे प्रस्तुत रूप में हो अथवा अप्रस्तुत रूप कवि का प्रकृति निरीक्षण और उसका वर्णन है विलक्षण। कालिदास की भार विश्व में गूँजती रही है और गूँजती रहेगी।

"शिवम्"

श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय

तारानगर (बीकानेर)

स्नातक-परिचय

१ श्री पं० रामचन्द्र शर्मा (मलसीसर); अध्ययन—सिद्धान्त-कौ० सं० श्रीमद्भागवत, रघुवंश, मेघदूतादि। आपने अपने समय में विद्वत्ता से नाम प्राप्त किया था। कुछ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया है। व्यापारी भी थे।

२ श्री प० हरिश्चन्द्र शर्मा (मलसीसर); अध्ययन—सिद्धान्त० श्रीमद्भागवत, लीलावती, मुहूर्तचिन्तामणि आदि। आपने ज्योतिष-विद्या द्वारा यश प्राप्त किया था। आप कर्मकाण्ड आदि कार्य में भी निपुण थे।

३ श्री पं०गङ्गाधर शर्मा (तारानगर); लघुकौमुदी, सारस्वत। तारानगर एवं कलकत्ता में पाण्डित्य कार्य करते हैं।

४ श्री पं० तुलसीराम शर्मा (तारानगर); सारस्वत चन्द्रिका, सिद्धान्त कौमुदी, श्रीमद्भागवत। आप तारानगर के प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ थे। आपका कुछ वर्ष पहले स्वर्गवास हो गया है।

५ श्री बाबू रामस्वरूप वकील (मण्डावर, बिजनौर); आप राजगढ़ में वकालत कर रहे हैं, कवि एवं लेखक भी हैं। आजादी की लहर, गान्धीगीता-गान, मजदूर, किसान, आदि कई संग्रह हाल में प्रकाशित हुए हैं। देश-सेवा के लिए सर्वदा कटिबद्ध रहते हैं।

६ श्री पं० विश्वनाथ शर्मा (तारानगर); आप बठरामपुर (बङ्गाल) में पाण्डित्य-कार्य कर रहे हैं।

७ श्री पं० ज्वाला प्रसाद शर्मा (तारानगर)।

८ श्री पं० पनूराम शर्मा (तारानगर); लघुकौमुदी, सारस्वत, ईटा-

९ पं० गिरधारीलाल शर्मा (तारानगर); आप भागवत आदि के सफल कथावाचक थे।

१० पं० ईश्वरदास चावलिया (तारानगर); आप तारानगरमें आदि का कार्य करते थे। अब आपका देहान्त हो गया है।

११ पं० रूपराम शर्मा (देवगढ़िया)

१२ श्री पं० सीताराम शर्मा (नोहर); आयुर्वेद भूषण, आयुर्वेदा H.M.B। आपने कलकत्ता में धन्वन्तरि औषधालय खोलकर जनता-जनार्दन खासी सेवा की थी। आपकी औषधियाँ विदेशों तक जाया करती हैं। कई औषधं गवर्नमेण्ट से रजिस्टर्ड भी हैं। आप ज्योतिषी भी थे। आपका हो गया है।

१३ पं० छज्जूराम शर्मा (सलुण्डी); आप पहले अध्यापन-कार्य कर हैं। आजकल व्यापार करते हैं।

१४ श्री पं० बलभद्र शर्मा (तारानगर); लघुकौमुदी, रघुवंश, कुमारसंभव। आप तारानगर के कर्मठ व्यक्ति थे। तारानगर मिडिल स्कूल संस्कृताध्यापक थे। अब आपका देहान्त हो गया है।

१५ पं० रामलाल शर्मा (कलाना); लघुकौमुदी, श्रीमद्भागवत। आप कलाना में पाण्डित्य-कार्य द्वारा जन-सेवा कर रहे हैं।

१६ श्री पं० मुरलीधर शर्मा (तारानगर); आप तारानगर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं।

१७ पं० जुगल किशोर शर्मा (तारानगर); आप आजकल राँची (बिहार) में वैद्यक कर रहे हैं। इससे पूर्व तारानगर एवं बलरामपुर (बंगाल) में भी चिकित्सा-कर्म कर चुके हैं।

१८ पं० परशुराम शर्मा सॉखोलिया (तारानगर); आप तारानगर में पाण्डित्य-कार्य कर रहे हैं।

१९ पं० महादेव प्रसाद शर्मा (तारानगर); आप कर्मकाण्डी एवं कथा-वाचक हैं।

२० पं० श्रीगोपाल आचार्य (तारानगर); आप कलकत्ते में व्यापार करते हैं।



श्री हीरालाल चौधरी

मैनेजिंग डाइरेक्टर—

चौधरी आयल मिल लि०, बनारस, चौधरी राइस एण्ड दाल मिल, बनारस।

हीरालाल देवीप्रसाद लि०, कलकत्ता।



१—श्री बंशीधर जी मंत्री। २—श्री देशचन्द जी मंत्री।
३—श्री केदारमल जी मंत्री। ४—श्री नरनारायण जी मंत्री।



श्री महावीरप्रसाद जी कन्दोई।

२१ पं० कन्हैयालाल शर्मा ; आपने सरदार शहर में पाण्डित्य-कार्य में अच्छी ख्याति एवं धन प्राप्त किया है।

२२ हरखचन्द दाधीच ; आप तारानगर में वैद्यक कर रहे हैं।

२३ पं० दयाकृष्ण व्यास ; तारानगर में कर्मकाण्ड का कार्य कर रहे हैं।

२४ पं० रामचन्द्र व्यास ; आप बनारस, देहली एवं बम्बई में व्यापार कार्य कर रहे हैं।

२५ बालकनाथ स्वामी वैद्य ; आप सरदार शहर में आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा-कार्य करते हैं।

२६ पं० रामेश्वर शर्मा (गांधी)।

२७ चन्द्रराम शर्मा (चंगोई) ; आप तारानगर में कर्मकाण्ड कर रहे हैं

२८ पं० ज्येष्ठानन्द पुष्करणा (भांथ)।

२९ पं० गिरधारीलाल शर्मा (नोहर) ; ज्योतिषशास्त्री, दैवज्ञभूषण वैद्यमनीषी। आप ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपका 'शिव पञ्चाङ्ग' १८ वर्ष से निकल रहा है।

३० पं० जयनारायण वावलिया (तारानगर), आप आयुर्वेद का कार्य करते हैं।

३१ डा० गुलजारीलाल एल. एम. एस. ; आप सरकारी अस्पतालों में डाक्टर रह चुके हैं। लोयलका हास्पिटल पिलानीमें भी डाक्टर रहे हैं। नेत्र-चिकित्सक भी थे। आपने वैदिक संहिता का भी अध्ययन किया था। अब आपका स्वर्गवास हो गया है।

३२ पं० कन्हैयालाल शर्मा (जुगाड़ी); आप स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं।

३३ पं० नारायणदत्त शर्मा ; आप 'मुंगेर' में वैद्यक कर रहे हैं।

३४ पं० भोलाराम शर्मा ; आप बरल में अध्यापन कर चुके हैं। [illegible] पाण्डित्यकर्म कर रहे हैं।

३५ पं० धीराम शर्मा वैद्य (बरल) ; आप आयुर्वेद चिकित्सा कार्य करते हैं।

३६ पं० जगन्नाथ शर्मा (धंगोई); आप तारानगर में कर्मकाण्ड का काम करते हैं।

३७ पं० रामप्रताप शर्मा (देवगढ़िया); आप व्यापार-कार्य करते हैं।

३८ पं० भूरामल शर्मा ; आप अनगुल (कटक) में ठाकुरवाड़ी में कार्य कर रहे हैं।

३९ पं० गोपीराम महरवाल ; आप आसाम में व्यापार करते हैं।

४० पं० उमाशङ्कर शर्मा A. S. V. (तारानगर); व्याकरण मध्यमा (बनारस), आयुर्वेदाचार्य (विद्यापीठ)। आप सरदार शहर में चिकित्सा कर रहे हैं। सरदार शहर में सार्वजनिक संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर हैं। इससे पूर्व रंगून में चिकित्सा-कर्म कर चुके हैं। राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस के सदस्य भी हैं।

४१ पं० हीरालाल शर्मा (तारानगर); आप जगात थानेदार हैं।

४२ श्री केशव प्रसाद गुप्त ; आप एम. ए. एल. एल. बी. हैं। आजकल चूरू में वकालत कर रहे हैं। इससे पूर्व कई जगह वकालत कर चुके हैं।

४३ पं० रावतमल मिश्र (तारानगर), आप तारानगर में पांडित्य-कार्य कर रहे हैं।

४४ पं० गोपीकृष्ण शर्मा (तारानगर); आप भादरा में अध्यापन-कार्य करते हैं। हास्य-रस के अच्छे कवि हैं। बीकानेर साहित्य-सम्मेलन भाद के आप स्वागतमंत्री थे।

४५ पं० डालूराम ओझा ; आप कालिम्पोङ्ग में व्यवसाय कर रहे हैं।

४६ पं० रूपराम शर्मा (तारानगर); सिद्धान्तकौमुदी, शेखर, मनोर आयुर्वेदाचार्य (विद्यापीठ)। आप शङ्कर आयुर्वेद फार्मेसी के अध्यक्ष हैं। चूरू चिकित्सा-कार्य करते हैं। चूरू वैद्य सभा के मंत्री हैं।

४७ पं० रामलाल मिश्र (तारानगर); आप तारानगर तहसील अर्जिनवीस हैं।

४८ पं० प्रेमराज व्यास (B. Com.); आप चटगाँव में एक जूट फर्म के डाइरेक्टर हैं। सार्वजनिक संस्थाओं में भी काफी ... लेते हैं।

४९ पं० जयचन्द्र शर्मा आयुर्वेदाचार्य ; आप सरदार शहर में वैद्यक रहे हैं।

५० पं० श्री गजानन्द ज्योतिषी (तारानगर) ; आप तारानगर ज्योतिष-कार्य कर रहे हैं। आप संगीतज्ञ एवं कवि भी हैं।

५१ पं० गंगाविष्णु शर्मा (भादरा) ; आप आजकल लखनऊ विद्यालय में संगीतशास्त्र का उच्च अध्ययन कर रहे हैं।

५२ काशीराम शर्मा (तारानगर) ; आप तारानगर के अच्छे संगीतज्ञ हैं

५३ पं गजानन्द शर्मा (धीरवास); आप धीरवास में मन्दिर में पुजारी हैं

५४ बेगराज ब्रह्मचारी (झाँमणी) ; आप शिवपाण्डिये की पवित्र भूमि योगाभ्यास कर रहे हैं।

५५ पं० नारायणदत्त शास्त्री प्रभाकर (तारानगर) ; आप तारानगर मिडिल स्कूल में संस्कृताध्यापक के पद पर कार्य कर रहे हैं। तारानगर सार्वजनिक संस्थाओं में आप उच्च पदों पर हैं।

५६ पं० रामजीलाल शर्मा (धीरवास) ; आप वृन्दावन में पाण्डित्यकर्म करते हैं।

५७ पं० शिवनारायण शर्मा (बाय) ; आप सिरसा में ज्योतिष-कार्य करते हैं।

५८ पं० गजानन्द शास्त्री (तारानगर) ; आप नागमर मिडिल स्कूल में संस्कृताध्यापक हैं।

५९ पं० पुष्करदत्त शास्त्री (कालूवास); आप [illegible] में प्रधानाध्यापक हैं।

६० पं० महावीर शर्मा (तारानगर); आप मोटरों द्वारा व्यापार करते हैं।

६१ पं० शिवनन्दन शर्मा (गांधी); आप 'पोष्ट इन्स्पेक्टर' के पद पर कार्य करते हैं।

६२ पं० रामनन्द ब्रह्मचारी ; आप [illegible]

६३ पं [illegible]

७६ पं० दुर्गादत्त शर्मा ; काशी व्याकरण मध्यमा पास कर, आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं।

७७ पं० सागरमल शर्मा ; आप दार्जिलिंग में व्यापार करते हैं।

७८ पं० मदनलाल बावलिया (काशी प्रथमा) ; आप तारानगर तहसील में मुंशीपद पर कार्य करते हैं।

७९ पं० बद्रीप्रसाद शर्मा ; काशी साहित्य मध्यमा, आप आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं।

८० पं० बनवारीलाल शर्मा ; आप (काशी व्याकरण मध्यमा पास कर), नोहर कांग्रेस दफ्तर में कार्य कर रहे हैं।

८१ सत्यनारायण शर्मा ; आप धीरवास में स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं।

८२ पं० दीपचन्द शर्मा; आप जाट हाई स्कूल संगरिया में संस्कृताध्यापक-पद पर कार्य कर रहे हैं।

८३ पं० पुष्करदत्त बावलिया ; विशारद, विद्याभूषण, संस्कृत व्याकरण मध्यमा (बनारस), आप अंग्रेजी का उच्च अध्ययन करते हैं। अच्छे लेखक और कवि भी हैं।

८४ पं० रामकुमार शर्मा वैद्य ; आप आजकल '[illegible]' में वैद्यक कर रहे हैं।

८५ पं० महावीर प्रसाद बावलिया ; आप 'महाजन' में [illegible] थानेदार हैं।

८६ पं० सीताराम शर्मा ; आप तारानगर [illegible] में [illegible] पद पर कार्य कर रहे हैं।

८७ पं० उदयचन्द्र शर्मा ; आप तारानगर में निजी व्यापार करते हैं।

८८ राधाकृष्ण शर्मा ; आप अध्यापन कार्य करते हैं।

८९ पं० अमरचन्द्र शर्मा ; आप [illegible] में [illegible] कार्य करते हैं

९० पं० आशाराम गुप्त ; आप तारानगर में निजी व्यापार करते हैं।

९१ पं० [illegible] शर्मा ; आयुर्वेद [illegible] में स्वतन्त्र वैद्यक कर रहे हैं।

... आप ज्योतिषशास्त्र के भी अच्छे विद्वान

६४ पं॰ जगन्नाथ शर्मा (कालूवास) ; आप कालूवास में वैद्यक करते हैं।

६५ पं॰ चन्द्रभानु शर्मा (गांधी); आप गान्धी में वैद्यक और ज्योति करते हैं।

६६ पं॰ सागरमल महरवाल (तारानगर) ; आप बंगाल में व्याप हैं।

६७ द्वारकाप्रसाद शर्मा (बीकानेर) ; आप मोहता रसायनशाला बीकाने करते हैं।

६८ पं॰ शङ्करदत्त शर्मा पाराशर्य (पीलीमन्दोरी) ; आप दार्जिलिङ्ग मे ... रहे हैं।

६९ पं॰ मोतीलाल शर्मा संगीतभूषण (तारानगर) ; आप तारानगर संगीतज्ञ हैं। आप कई बार 'रेडियो' पर भी गा चुके हैं। आजकल ... में सङ्गीत-कार्य कर रहे हैं।

७० पं॰ जेठमल शर्मा उपाध्याय (तारानगर) ; आप तारानगर मिडिल में अध्यापक हैं तथा बी० ए० परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं।

७१ श्री पं॰ नरसिंहदास शर्मा ; आप तेजपुर (आसाम) में अपना करते हैं।

७२ श्रीयुत् चोरुलाल व्यास (तारानगर) ; आजकल आप डाक्टरी काय हैं।

७३ पं॰ व्रजमोहन शर्मा ; आप हिसार में निजी व्यवसाय करते हैं।

७४ पं॰ श्रीराम शर्मा ; आप कलकत्ता ऐसोसियेशन की काव्यमध्यमा अब महेरो में पाण्डित्य एवं निजी व्यवसाय करते हैं।

७५ स्वामी बुधराम ; साहित्य व्याकरण शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य; आप आज-...स में डाक्टरी का अध्ययन कर रहे है। गद्य-पद्य लेखन में आपकी प्रतिभा है।

७६ पं० दुर्गादत्त शर्मा ; काशी व्याकरण मध्यमा पास कर, आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं।

७७ पं० सागरमल शर्मा ; आप दार्जिलिंग में व्यापार करते हैं।

७८ पं० मदनलाल बावलिया (काशी प्रथमा) ; आप तारानगर तहसील में मुंशीपद पर कार्य करते हैं।

७९ पं० बदरीप्रसाद शर्मा ; काशी साहित्य मध्यमा, आप आजकल अध्यापन-कार्य करते हैं।

८० पं० बनवारीलाल शर्मा ; आप (काशी व्याकरण मध्यमा पास कर), नोहर कांग्रेस दफ्तर में कार्य कर रहे हैं।

८१ सत्यनारायण शर्मा ; आप धीरवास में स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं।

८२ पं० दीपचन्द शर्मा; आप जाट हाई स्कूल संगरिया में संस्कृताध्यापक-पद पर कार्य कर रहे हैं।

८३ पं० पुष्करदत्त बावलिया ; विशारद, विद्याभूषण, संस्कृत व्याकरण मध्यमा (बनारस), आप अंग्रेजी का उच्च अध्ययन करते हैं। अच्छे लेखक और कवि भी हैं।

८४ पं० रामकुमार शर्मा वैद्य ; आप आजकल 'मियांवाली' में वैद्यक कर रहे है।

८५ पं० महावीर प्रसाद बावलिया ; आप 'महाजन' में जगात थानेदार हैं।

८६ पं० सीताराम शर्मा ; आप तारानगर धर्मार्थ औषधालय में वैद्य पद पर कार्य कर रहे हैं।

८७ पं० उदयचन्द्र शर्मा ; आप तारानगर में निजी व्यापार करते हैं।

८८ राधाकृष्ण शर्मा ; आप अध्यापन कार्य करते हैं।

८९ पं० अमरचन्द्र शर्मा ; आप गङ्गानगर में ज्योतिष कार्य करते हैं।

९० श्री आशाराम गुप्त ; आप तारानगर में निजी व्यापार कर रहे है।

९१ पं० कुरुक्षेत्र शर्मा ; आयुर्वेद भिषक, आप गाँवों में स्वतन्त्र वैद्यक कर रहे है।

... रह चुके हैं, आजकल तारानगर में सेवा
रहे हैं।

९३ पं० चुन्नीलाल शर्मा

९४ पं० गङ्गाजल शर्मा ; आप नोहर में कर्मकाण्ड कार्य करते हैं।

९५ पं० हर्षचन्द्र शर्मा विशारद ; आप रतनगढ़ में साहित्यरत्न और
का अध्ययन कर रहे हैं।

९६ नानूराम शर्मा ; आप गङ्गा नगर में अध्ययन कर रहे हैं।

९७ मोहनलाल शर्मा ; आप तारानगर में निजी व्यवसाय करते हैं।

९८ पं० वृद्धिचन्द्र शर्मा ; आप गङ्गानगर में संस्कृत का अध्ययन कर
।

९९ रूपराम शर्मा ; आप 'रतनगढ़' में संस्कृताध्ययन क

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व डायरेक्टर आफ एज्यूकेशन व राजपूताना युनिवर्सिटी के वर्तमान रजिस्ट्रार

श्रीयुत् रायबहादुर मदनमोहन वर्मा एम० ए०

द्वारा

लिखित सम्मति

पाठशाला का निरीक्षण करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यद्यपि समय कम था, फिर भी मैंने देखा कि पढ़नेवाले लड़कों की संख्या करीब ३० थी, लेकिन यह बताया गया कि पाठशाला में प्रविष्ट लड़कों की संख्या उपस्थिति से अधिक है। संस्था के संरक्षकों को चाहिये कि वे इसे परीक्षादि के लिए किसी सम्मानित संस्कृत-विश्वविद्यालय या कालेज से सम्बन्धित करवा लें। जब यह संस्था नियमित एवं व्यवस्थापूर्ण तरीके से काम करने लग जायेगी, तब सम्भवतः ऐसी स्थिति में गवर्नमेन्ट भी इसे कुछ सहायता देने लगेगी।

हस्ताक्षर एम० एम० वर्मा

२८-११-२७

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर

श्रीयुत् मान्धातासिंह जी

द्वारा

लिखित सम्मति

पं० गोवर्द्धन प्रसादजी द्वारा संचालित संस्कृत-पाठशाला का निरीक्षण करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। रजिस्टर में छात्रों की संख्या ३३ है। ११ छात्रों को शहर के महाजनों द्वारा सहायता दी जाती है। शेष छात्रों का प्रबन्ध उनके अभिभावकों या सम्बन्धियों द्वारा किया जाता है। मैं चाहता हूं कि यह संस्था अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करे।

कैम्प रेणी।

हस्ताक्षर—मान्धाता सिंह

२५-२-२८

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व दीवान

श्रीयुत् सिरेमल बापना

द्वारा

लिखित सम्मति

मैं इस संस्था का निरीक्षण करके बहुत प्रसन्न हुआ। [illegible] बहुत [illegible] लाभप्रद मालूम होता है। इस संस्था में [illegible]

१-११-३६ हस्ताक्षर एस० ए० शा

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व शिक्षाविभागाध्यक्ष

श्री मान जुगलसिंह जी खींची एम० ए० बार एट ला

प्रिंसिपल डूंगर कालेज बीकानेर द्वारा लिखित सम्मति

आज मुझे संस्कृत-पाठशाला के कार्य का निरीक्षण करने का सुयोग
। वर्तमान मुख्याध्यापक के परिश्रम और उत्साह के कारण यह पाठश
ति के पथ पर अग्रसर हो रही है। परीक्षा-परिणाम प्रशंसनीय है।

जुगलसिंह

२०।६।४१ डाईरेक्टर आव एजूके

बीकानेर।

बीकानेर राज्य के भूतपूर्व शिक्षा एवं यातायात मंत्री

श्री मान् पं० गौरीशङ्कर जी आचार्य

द्वारा

लिखित सम्मति

आज ता० ४-७-४४ को राजस्थान-संस्कृत-विद्यालय देखने का शुभ अवस
। देवभाषा संस्कृत के प्रचार से भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्म की र
उन्नति होगी। इसलिए प्रत्येक भारतीय व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इ
। को, जो इस शहर में देवभाषा के प्रचार के लिए सब कठिनाइयों को सह
लगी हुई है, सब प्रकार से सहायता करे। पाठशाला की आर्थिक अवस्थ
न होना हम सब के लिए लज्जा की बात है। अध्यापक महोदयों ने निःस्वा
से पाठशाला की जो सेवा की है, उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। मैं हृदय से
की उन्नति चाहता हूं।

आचार्य गौरीशङ्कर



भालचन्द्र जी विश्वकर्मा



पं० गजानन्द जी पुजारी
(भीरवाम)



श्री लाउ जी खेमानी



[illegible]
[illegible]
[illegible]
([illegible])

-११-३६ हस्ताक्षर एस० ए० थापन

बीकानेर स्टेट के भूतपूर्व शिक्षाविभागाध्यक्ष

श्री मान जुगलसिंह जी खींची एम० ए० बार एट ला

प्रिंसिपल डूंगर कालेज बीकानेर द्वारा लिखित सम्मति

आज मुझे संस्कृत-पाठशाला के कार्य का निरीक्षण करने का सुयोग प्राप्त । वर्तमान मुख्याध्यापक के परिश्रम और उत्साह के कारण यह पाठशाला ... के पथ पर अग्रसर हो रही है। परीक्षा-परिणाम प्रशंसनीय है।

जुगलसिंह

२०।६।४१ डाईरेक्टर आव एजूकेशन
बीकानेर।

बीकानेर राज्य के भूतपूर्व शिक्षा एवं यातायात मंत्री

श्री मान् पं० गौरीशङ्कर जी आचार्य

द्वारा

लिखित सम्मति

आज ता० ४-७-४४ को राजस्थान-संस्कृत-विद्यालय देखने का शुभ अवसर ... देवभाषा संस्कृत के प्रचार से भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्म की रक्षा ... होगी। इसलिए प्रत्येक भारतीय व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इस ... को, जो इस शहर में देवभाषा के प्रचार के लिए सब कठिनाइयों को सहते ... लगी हुई है, सब प्रकार से सहायता करे। पाठशाला की आर्थिक अवस्था ... होना हम सब के लिए लज्जा की बात है। अध्यापक महोदयों ने निःस्वार्थ पाठशाला की जो सेवा की है, उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। मैं हृदय से ... की उन्नति चाहता हूं।

 आचार्य गौरीशङ्कर

श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय का

संक्षिप्त इतिहास

स्थापना—पौष सुदी २ विक्रम संवत् १९५६

उक्त शुभ मिति को श्रद्धेय पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री ने विद्यालय की स्थापना श्री कल्याणराय जी के मन्दिर में की और वर्तमान में भी वह वहीं है।

विद्यालय उस परम पिता शंकर की असीम अनुकम्पा से अपने जीवन के सुदीर्घ ५० वर्ष समाप्त कर ५१ वें वर्ष का शुभ प्रभात देख रहा है। इस सुदीर्घ काल में विद्यालय-संचालन में जो कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, वे सुयोग्य संचालक की कर्मण्यता एवं कार्य-सम्पादन-कुशलता के कारण दूर हो गईं। फलस्वरूप आज भी उनके शिष्यवृन्द पूर्ण विद्वान होकर स्वदेश की इस विषम परिस्थिति में भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का भार वहन कर रहे हैं।

उद्देश्य

विद्यालय का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण एवं स्थानीय ४ वर्णों के गरीब, दयनीय तथा असमर्थ छात्रों को भोजन, वस्त्र, एवं पुस्तकादि उपयोग सामग्री एवं व्याकरण, साहित्य, न्यायादि की उत्तम शिक्षा देकर होनहार नागरिक तैयार करना ही है। साथ-साथ हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

सन् ३८ के पहले वेदादि सभी शास्त्रों की प्राचीन पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। बाद में बीकानेर गवर्नमेन्ट से सम्बन्धित होने पर परीक्षा अनिवार्य कर दी गयी। अभी भी वही क्रम चालू है। विद्यालय सार्वजनिक संस्था है, इसका कार्य दानवीर सज्जनों की सहायता से ही चलता है। कलकत्ता-बंगाल संस्कृत एसोसियेशन एवं गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज बनारस की परीक्षाएँ दिलायी जाती हैं। साथ-साथ गोरखपुर, शिक्षा-विभाग राजस्थान एवं साहित्य-सम्मेलन बीकानेर की भी परिक्षाएँ दिलाई जाती है। इसका हिसाब राजस्थान-गवर्नमेण्ट देखती है। आय-व्यय एवं छात्रों की मासिक रिपोर्ट भी शिक्षा-विभाग में भेजी जाती है। विद्यालय की विशेष जानकारी के लिये पृथक विवरण-पत्रिका शीघ्र ही प्रकाशित करवाने का विचार है। यद्यपि श्री पण्डितजी के जीवन से विद्यालय का विशेष सम्बन्ध होने के कारण प्रधान ज्ञातव्य लिखना अनावश्यक न होगा। आजकल विद्यालय के अन्तर्गत एक स्टेट हिन्दी प्राइमरी स्कूल भी चलता है।

श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय का

संक्षिप्त इतिहास

स्थापना—पौष सुदी २ विक्रम संवत् १९५६

इस शुभ तिथि को श्रद्धेय पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री ने विद्यालय की स्थापना श्री कल्याणराय जी के मन्दिर में की और वर्तमान में भी वह वहीं है।

विद्यालय उस परम पिता शंकर की असीम अनुकम्पा से अपने जीवन के सुदीर्घ ५० वर्ष समाप्त कर ५१ वें वर्ष का शुभ प्रभात देख रहा है। इस सुदीर्घ काल में विद्यालय-संचालन में जो कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, वे सुयोग्य संचालक की कर्मण्यता एवं कार्य-सम्पादन-कुशलता के कारण दूर हो गईं। फलस्वरूप आज भी उनके शिष्यवृन्द पूर्ण विद्वान होकर स्वदेश की इस विषम परिस्थिति में भी उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का भार वहन कर रहे हैं।

उद्देश्य

विद्यालय का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण एवं स्थानीय ४ वर्णों के गरीब, दयनीय तथा असमर्थ छात्रों को भोजन, वस्त्र, एवं पुस्तकादि उपयोग सामग्री एवं व्याकरण, साहित्य, न्यायादि की उत्तम शिक्षा देकर होनहार नागरिक तैयार करना ही है। साथ-साथ हिन्दी, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

सन् ३८ के पहले वेदादि सभी शास्त्रों की प्राचीन पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। बाद में बीकानेर गवर्नमेन्ट से सम्बन्धित होने पर परीक्षा अनिवार्य कर दी गयी। अभी भी वही क्रम चालू है। विद्यालय सार्वजनिक संस्था है, इसका कार्य दानवीर सज्जनों की सहायता से हो चलता है। [illegible] संस्कृत एसोसियेशन एवं गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज [illegible] की परीक्षायें दिलाई जाती हैं। साथ-साथ गोरखपुर, शिक्षा-विभाग राजस्थान एवं [illegible] बीकानेर की भी परीक्षायें दिलाई जाती हैं। इसका हिसाब [illegible] देखती है। आय-व्यय एवं छात्रों की मासिक रिपोर्ट [illegible] जाती है। विद्यालय की विशेष जानकारी के लिये [illegible] प्रकाशित करवाने का विचार है। [illegible] का विशेष सम्बन्ध होने के कारण [illegible] आजकल विद्यालय के अन्तर्गत एक [illegible] हिन्दी [illegible]

विद्यालय का कोई निजी भवन नहीं है, किन्तु स्थानीय उग्रसेना माहे समाज के कल्याण राय जी के मन्दिर में ही विद्यालय लगता है। उन्होंने ... न विद्यालय को प्रदान-सा ही कर दिया है; फिर भी इसको विशाल ... लिए पास में ही और जमीन भी ली गयी है। शीघ्र ही दानवीरों की सहा... इसका निजी भवन निर्मित होगा, ऐसी ही आशा है।

पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम में विशेष कर वे ही पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, जो कलकत्ता, बनार... कालेजों द्वारा परीक्षाओं में नियत की जाती हैं। साथ-साथ अन्य... ओं के पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी पढ़ाई जाती हैं। हिन्दी और गणित ... अनिवार्य है तथा प्रत्येक छात्र को सन्ध्या-वन्दन, गायत्री-जाप एवं ... भी अपरिहार्य रूपेण करने होते हैं।

परीक्षाफल

सन् १९३९ से सन् १९४८ तक परीक्षाफल इस प्रकार रहे। पहले पर... निय... नहीं थी। प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री तथा खण्ड मध्यमा एवं विश... ... राजकीय विद्यालयों की परीक्षाओं में कुल ८५ छात्र सम्मिलित हुए, जि... २ छात्र प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुए।

आय-व्यय

आय-व्यय सं० १९५६ की रामनवमी से लेकर सं० २००६ की रामनव... का दस-दस वर्ष के आँकड़ों से अवलोकनार्थ दिया जा रहा है। आय ... चन्दा, वार्षिक चन्दा, विशेष सहायता, और लगान तथा सन् १९३८ ... फुटकर सीधा वगैरह (अन्न का) एवं छात्रों के द्वारा श्री पण्डित जी को ... भेंट शामिल है। व्यय में भोजन (अन्न, घृत, तेल, मसाला, लकड़ी) व... परीक्षा-खर्च, बर्तन, पिसाई, पानी, फर्नीचर, पोस्टेज, वेतन और फुट... ... शामिल है।

वार्षिक सहायकों की नामावली

१. श्री राजस्थान गवर्नमेन्ट शिक्षा-विभाग बीकानेर ३००)
२. श्री पुरणचंदजी बंशीधर जी मंत्री कालिम्पोंग ६१)
३. श्री कालूराम जी ओंकारमल जी शारदा ईश्वरपुर ५०)
४. श्री खोरमल जी पेड़ीवाल महावीर ओयल राइस मिल्स फारबिसगंज २५)
५. श्री नागरमल जी पेड़ीवाल C/o श्री गणेशदास हजारीमल फुलहाट, दिनाजपुर २५)
६. श्री गिरधारीलाल जी मुँदड़ा पन्नालाल बल्लावरमल, दिनाजपुर २५)
७. श्री रामजीलाल जी सोनी इस्टर्न कम्पनी लिमिटेड, मिर्जापुर २५)
८. श्री मोतीलाल जी सरावगी चमनाधर मोतीलाल, कलकत्ता २५)
९. श्री ओंकारमल मंत्री कालिम्पोंग १२)
१०. श्री म्युनिसिपल बोर्ड, तारानगर २४)
११. श्री छगनलाल जी बागड़ी, राजगढ़ १२)
१२. श्री श्रीलालजी मेमाणी, तारानगर ५)
१३. श्री महावीर प्रसाद सरावगी जलपाईगुड़ी ५)
१४. श्री महावीर प्रसाद मन्त्री, कालिम्पोंग ५)
१५. श्री मदनलाल मन्त्री, कालिम्पोंग ५)
१६. श्री चम्पालाल सरावगी सरावगी एन्ड को० जलपाईगुड़ी ४॥)
१७. श्री गजानन्दजी मेमाणी, दार्जिलिंग ३)
१८. श्री कुरुक्षेत्र जी चौधरी, तारानगर ३)
१९. श्री जगन्नाथ रामप्रसाद जोशीवाला तारानगर २)
२०. श्री जुगलकिशोर जी शारदा, तारानगर २)

५९९॥)

श्री बीकानेर गवर्नमेन्ट ने विद्यालय की आर्थिक स्थिति एकदम कमजोर देखकर इसकी प्राचीनता, उपयोगिता एवं आवश्यकता का अनुभव कर अपनी मासिक सहायता १०) रुपये से २५ रुपये वृद्धि करके उदारता का परिचय दिया है।

संवत्	आय	व्यय	विवरण
१९५६ से १९६५ तक	११६७॥)	१२०१।=)॥	
१९६६ से १९७५ तक	१८०८)	१६७५-)	[illegible]
१९७६ से १९८५ तक	५०५६॥=)	५५९६।=)॥	[illegible]
१९८६ से १९९५ तक	१८२५॥.ञ)॥	३०००)	
१९९६ से २००६ तक	१०१६९॥=॥	११९६१-=।	
	[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]

[illegible] किया गया। सं० १९९८ से सन् १९९० तक कुल अन्न १८०॥ [illegible] आय [illegible] दाना दो (१८०॥ [illegible]) व्यय हो गया। [illegible] अत में सभी दाता [illegible]
इस को विशेष सहायता प्राप्त है।

वार्षिक अन्नदाताओं की नामावली

	नाम	तादाद अन्न	संख्या	नाम	तादाद अन्न
	श्री सेठ [illegible] जी [illegible] जी मंत्री, भारानगर	[illegible]	४.	,, [illegible] जी [illegible] जी [illegible], भारानगर	२॥)
	,, [illegible] जी [illegible] जी [illegible], भारानगर	२॥)	५.	,, [illegible] जी [illegible], [illegible]	१)
	,, [illegible] जी [illegible] जी [illegible], भारानगर	२॥)			१[illegible]

मासिक चन्दादाताओं की सूची

	नामावली	तादाद	संख्या	नामावली	तादाद
	श्री लक्ष्मीचन्द जी [illegible] जी मंत्री, भारानगर	[illegible])	१५.	,, काशीराम जी पेमीराम	१)
	,, रतनमल जी श्रीराम जी सरावगी, भारानगर	१)	१६.	,, रामकुमार जी सरावगी	१)
	,, कुनणमल जी सरावगी, [illegible]	१)	१७.	,, काशीराम जी पूरणमल	१)
	,, हीरालाल जी देवी प्रसाद	॥)	१८.	,, हीरालाल जी कन्दोई	१)
	,, मुरलीधर जी घासीमल	॥)	१९.	,, [illegible] जी [illegible]	१)
	,, बंशीधर जी मिरजामल जी	॥)	२०.	,, रामानन्द जी कन्दोई	१)
	,, सुगनचंद जी ओझाणी	॥)	२१.	,, विश्वनाथ जी चौधरी घाघल	१)
	,, बंशीधर जी ओझाणी	॥)	२२	,, गौरीदत्त जी नौरंगराय जी घाघल	१)
	मुरलीधर जी ओंकारमल गुप्ता सिद्धेश्वर	॥)	२३.	,, तनसुखरायजी दुर्गादत्त घाघल	१)
	दयाचन्द जी सागरमल जी	॥)	२४.	,, पुरखचन्द रतनमल घाघल	१)
	रतनमल जी जोड़ीवाला	१)	२५.	,, कुन्दनदास जी कलानीवाला	१)
	डेडराज जी सरावगी	१)	२६.	,, छोगमल नौरंगराय बका	१)
	चुन्नीलाल जी दुर्गादत्त जी	१)	२७.	,, फूलचन्द स्वर्णकार	१)
	तुलसीराम जी सरावगी	१)	२८.	,, रुघलाल जी महावीर पसारी	१)
			२९.	,, हरिराम दुर्गादत्त कन्दोई	१)
			३०.	,, नन्दलाल बनारसीदास	१)
			३१.	,, दुर्गादत्त जी पंसारी	१)

संख्या	नामावली	तादाद	संख्या	नामावली	तादाद
३२.	श्री बालकृष्ण जी मनाणी	≠)	५३.	श्री नेनराम जी पसारी	≠)
३३.	„ मोगराज जी जालान 'चूरू'	।)	५४.	„ मुरलीधर फतेहपुरिया	≠)
३४.	„ कुलछतरदास जी चौधरी	।)	५५.	„ नारायणदास जी फतेहपुरिया	≠)
३५.	„ सोहनलाल सुगनाणी	≠)	५६.	„ गुलाबचन्द कुनणमल	≠)
३६.	„ मिरजामल हनुमान प्रसाद	≠)	५७.	„ रिखाराम चगोड़वाला	≠)
३७.	„ मुकुन्दलाल जी सुगनाणी चांचल	≠)	५८.	„ दुलीचन्द सागरमल	≠)
३८.	„ महादेवप्रसाद केसरीचन्द	≠)	५९.	„ बैजमल मक्त	≠)
३९.	„ दुरजामल महादेव	≠)	६०.	„ कुलछतरदास महावीर सरावगी	≠)
४०.	„ शिवप्रसाद भूरामल	≠)	६१.	„ आईदान लिखमीचन्द	≠)
४१.	„ नथमल जी सुगनाणी चांचल	≠)	६२.	„ सुगनचन्द सरावगी	≠)
४२.	„ बद्रीनारायण जी कंदोई	≠)	६३.	„ छोगमल आशाराम	≠)
४३.	„ रुघलाल जी कंदोई	≠)	६४.	„ श्रीराम रामेश्वर	≠)
४४.	„ पुरणचन्द बंशीधर	≠)	६५.	„ पितरूराम धीरवासिया	≠)
४५.	„ टीकमचन्द फूलचन्द कंदोई	≠)	६६.	„ सुरजमल पेड़ीवाल	≠)
४६.	„ प्रेमराज जी कंदोई	≠)	६७.	„ मोतीलाल पेड़ीवाल	≠)
४७.	„ जैनरूपजी कंदोई	≠)	६८.	„ रामनारायण पेड़ीवाल	≠)
४८.	„ हरखचन्द जी कंदोई	≠)	६९.	„ भगवान दास बद्रीदास	≠)
४९.	„ महादेव प्रसाद कंदोई	≠)	७०.	„ गौरीशंकर चौधरी	≠)
५०.	„ धनराज कंदोई	≠)	७१.	„ महावीर सुनार	≠)
५१.	„ आईदान जी जोधाणी	≠)			
५२.	„ नथमल जी खेमाणी	≠)			१॥।)

विशेष :—

उपरोक्त चन्दादाताओं में कितने ही सज्जनों का चन्दा ४-५ वर्ष से प्राप्त नहीं हुआ, अतः भिजवाने की उदारता करें।

विशेष

उपरोक्त वार्षिक सहायकों में कितने ही सज्जनों की सहायता ३-४ वर्ष से प्राप्त नहीं हुई है। अतः भिजवाने की उदारता करें।

विशेष सहायता

विद्यालय उन सभी श्रीमानों का हृदय से समय-समय पर तन-मन-धन से सहायता की जो सूचना

फरनाणी, सिरसा को कोटिशः धन्यवाद है, जिन्होंने विद्यालय को बहुत २०) मासिक सहायता देकर उदारता का परिचय दिया है। निम्नलि... ों का भी विद्यालय हृदय से अभिनन्दन करता है, जिन्होंने अनेक प्रका... सहायता की है। श्री दिलसुखराय सागरमल, लुहारीवाला, भा... रामचन्द्र जी हीरालाल जी, लिखमीचन्द जी मंत्री, श्री जशरूपदास जी, लूण... श्री सरदारमलजी नथमल जी शारदा, श्री मुरलीधर जी खेमाणी, श्रीलाल ...ी, श्री हीरालाल जी चौधरी जी, श्री तुलसीराम जी सरावगी, श्री वंशी... सरावगी, श्री हजारीमल जी चाचाण, श्री काशीराम जी पेड़ीवाल, श्री हीराला... कन्दोई, श्री रावतमल जी जोड़ीवाला, श्री अईदान जी जोधाणी, श्री बद्रीनाराय... कन्दोई एवं अन्यान्य सभी हितैषियों से विद्यालय कृतज्ञता प्रकट करता हुआ निवेदन करता है कि भविष्य में भी वे सदैव विद्यालय को अपना जानक... बनाए रखेंगे।

पुनश्च

श्री सेठ कुरुक्षेत्र जी चौधरी ने विद्यालय के अन्तर्गत शीघ्र बनने वाले कुन्ड... ५०१) रुपये देने का वचन दिया है। एतदर्थ उन्हें धन्यवाद है !!!

राजपूताना के प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता एवं ख्यातनामा वैद्यराज

श्री पं० उमाशंकराचार्य जी

का

संक्षिप्त जीवनचरित

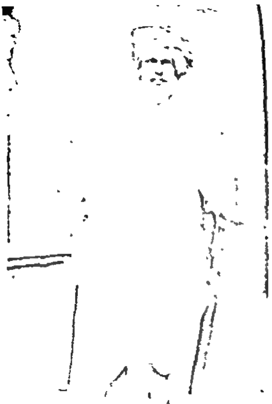
उमाशंकराचार्य जी जीवन के ३५ वसन्त देख चुके हैं। इस अल्पायु में भी ... की अनेक लहरों से हँस हँस कर खेल चुके हैं और जीवन के अन्तस्तल का प्रयास अब करने लगे हैं—

सुदूर बरमा के मोलमीन नगर में रहकर भी सार्वजनिक सेवक और सुयोग्य ...क के विरोधी दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह करते रहे (विरोधी ... कि दोनों ही कार्य समय-सापेक्ष्य हैं।) ये एक युग से सरदार शहर के ... जीवन में भाग ले रहे हैं। ये सुकवि और सुलेखक होने के अतिरिक्त भी हैं। मलेरिया पर आपकी एक पाण्डित्यपूर्ण पुस्तिका प्रकाशित हो चुकी ...की आयुर्वेद-जगत के पत्रों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, और कई शीघ्र ही होने वाली हैं। आप बीकानेर राज्य-साहित्य-सम्मेलन के छठे अधिवेशन

में आयुर्वेद-परिषद् के अध्यक्ष-पद को सुशोभित कर चुके हैं। जीवन के आप यथार्थ द्रष्टा हैं। और इसी यथार्थवादिता ने परम्पराप्रेमी पण्डित समाज का विशिष्ट सदस्य होने पर भी प्रतिक्रियावादी होने से आपको बचा लिया। आप में प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ विद्रोह की ज्वलन्त चिनगारियां भी हैं। आप नवीन और प्राचीन के संगम पर जीवन के एक तीर्थ का निर्माण कर रहे हैं।

अगर कठोर कर्मठता का अभाव नहीं होता, तो वे आज हमारे प्रान्त का निश्चय नेतृत्व करते होते। शरीर के विशेष तो है ही, परन्तु मनोजगत् भी आप के लिये अगम्य नहीं है। आयुर्वेद की आराधनाने यद्यपि साहित्य की साधना को आक्रान्त कर लिया है, पर आपका कवि अब भी जीवित है। सरदार शहर के अग्रगामी सार्वजनिक जीवन के आप अग्रणी हैं, स्थानीय प्रजापरिषद् के उपाध्यक्ष हैं, और राजपुताना रोजनल कौंसिल में तहसील के प्रतिनिधि हैं। तारानगर के नागरिक होने पर भी सरदारशहर का आपने अपना कार्य क्षेत्र बना लिया है, परन्तु तारानगर के प्रति भी आप सर्वथा जागरूक हैं। स्थानीय सेवा-समिति-औषधालय के आप प्रधान वैद्य हैं।

मूलचन्द सेठिया
जनवरी १९४६



पं० गोपालचन्द्र जी शास्त्री



पं० नवरंग राय जी शास्त्री

॥ श्रीः ॥

पं० नित्यानन्द शास्त्री सारस्वत

आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न, हिन्दीप्रभाकर,
आयुर्वेद प्रधानाध्यापक, बिड़ला
विद्यालय, पिलानी (जयपुर)

पूज्य
पण्डित श्री
गोवर्द्धन जी
शास्त्री को मैं
यह छोटी सी
श्रद्धाञ्जलि बड़ी नम्रता
से भेंट कर रहा हूँ।
उन्होंने ६० वर्षों तक श्री
राजस्थान संस्कृत विद्यालय तारा
नगर द्वारा संस्कृत साहित्य की जो
अप्रतिम सेवा की है, वह हम लोगों
के लिये एक महान और अनुकरणीय
उदाहरण है। पण्डित जी ने बीकानेर के
पिछड़े इलाके में सैकड़ो सुयोग्य शिष्य तैयार
किये हैं जिनके द्वारा संस्कृत शिक्षा और
मानवीय धर्म का अपूर्व प्रचार हो रहा है। हम
बड़े भाग्यशाली हैं, और हमें कृतज्ञ होना चाहिए कि ईश्वर
ने देववाणी की शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा मनस्वी और
विद्वान् पुरुष दिया है, जो कि राजस्थान की आगामी
पीढ़ियों के लिये भी पथ प्रदर्शक का काम देगा। परमात्मा
करे हमें आपकी हीरक-जयन्ती मनाने का मौका भी मिले।

—पं० नित्यानन्द सारस्वत

॥ श्री ॥

अमरगिरायाः प्रौढ़विद्वांसः छात्रसंसारे सुप्रतिष्ठिताः

श्री कृष्णचन्द्राचार्याः

(अध्यक्ष) श्री रघुनाथ विद्यालय संस्कृत कालेज (रतनगढ़)

गोवर्द्धन प्रसादानां विदुषां कर्मयोगिनाम् ।
जयन्ती राजतामेषा स्वर्णप्रज्ञा यशोन्विता: ॥१॥

श्री महामहिम्नां छात्र-संसदि लब्ध-कीर्तीनां, तारा-नगरस्थ श्रीराजस्थान-संस्कृतविद्यालयकुलपतीनां विद्वन्मूर्धन्यानां मान्यानां श्रीगोवर्द्धनप्रसादशास्त्रिणां स्वर्णजयन्तीयं चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डिता यशोराशिरिवासेतु हिमालयं विद्योतमाना सुरभारती-सेविनां मनस्विनां मनः कौमुदी वितनोतु नित्यम् ।

मनीषि-वर्याणामेषां स्वर्णमहोत्सवावसरे सबहुमानं सुमनोऽञ्जलिमर्पयन्तः प्रमोदमानमानसाः स्मः। प्रार्थ्यते च भगवान्नारायणश्चिरजीवातवे हीरकजयन्तीं प्रेक्षणाय चैषां महात्मनाम् ॥

—श्री कृष्णचन्द्राचार्यः

वैद्य कुलपति, सफल अध्यापक

श्रीमान् पं० मणिरामजी शास्त्री

भिषगाचार्य, भिषड्मणि,

अध्यक्ष

श्री हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय

रतनगढ़ (बीकानेर)

"श्री पं० गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री ने निरन्तर ६० वर्षों तक सुरभारती की जो अनुपम सेवा की है वह अत्यन्त प्रसंशनीय है। ऐसे महापुरुषों की स्वर्ण जयन्ती होनी भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामना समर्पित करता हुआ आपकी हीरक जयन्ती के लिए भगवान् से प्रार्थना करता हूं।

भवदीय--
वै० मणिराम शर्मा



हमारे प्राचीन संस्कृत विद्यालय

पं० विद्याधर शास्त्री, विद्यारत्न एम० ए०
प्रधान संस्कृताध्यापक डूङ्गर कालेज 'बीकानेर'

कालस्य तस्य स्मृतिरेव रम्या बोधाय बोध्यो भवतिश्मयस्मिन्।
विडम्बनेयं महती युवानां हास्याय त्रिधा यदवाप्यतेऽद्य ॥१॥

परम हर्ष है कि आज विद्वत् प्रवर, परम सद्धेय पं० श्री गोवर्द्धन-... जी शास्त्री की सेवा में भक्ति-पुष्पाञ्जलि समर्पण के साथ हमारी ...चीन संस्कृत परम्परा पर भी लिखने का यह महनीय अवसर ...ा है।

संस्कृत भाषा के अनुशीलन से जिन गुणों का विकास जीवन में ...ता है, उनका प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो मान्यवर का जीवन हमारे ... एक आदर्श जीवन है। प्रतिक्षण भगवान्-स्मरण, शास्त्र-चिन्तन ...वं धार्मिक विधि में निरन्तर रहकर अध्ययन अध्यापन द्वारा ...का कल्याण करना, यही संस्कृत के विद्वानों का सबसे महान् ... है।

संसार के बाह्याडम्बर से दूर रहकर साधारण जीवन यापन द्वारा ...नी आवश्यकताओं को नियन्त्रित रखना इनका एक स्वाभाविक ... होता है।

हमारे चरित नायक में इन सब गुणों का एक मूर्तिमान प्रतिविम्ब ...ने को मिलता है। ऐसे गुरुजनों के पास जो छात्र अध्ययन करते उनमें सदाचारप्रवृत्ति स्वयमेव उद्भूत हो जाती है। और ऐसे ... जिस मण्डल में रहते हैं उस मण्डल को वे एक धार्मिक वातावरण पूर्ण कर देते हैं।

हमारे प्राचीन संस्कृत विद्यालयों में जीवन के इस धार्मिक विकास ही सबसे अधिक ध्यान दिया जाता था। आज का छात्र दैनिक ...ों को पढ़कर ज्ञान बनाने में तो सबसे अधिक आगे बढ़ा हुआ ... देता है, परन्तु जीवन में जिस धार्मिक एवं नैतिक विकास की ...ता है, उसमें वह शून्य रहता है।

मानव जीवन मे आवश्यकता इस बात की है कि इसमें विशालता नम्रता, उदारता, और आत्मानुभूति के साथ, संकुचित वृत्ति, उद्दण्डता और अहम्मन्यता के साथ रहने वाली मूर्खता का नाश हो। आजकल की शिक्षा कहने को तो शिक्षा प्रसार करती है, परन्तु शिक्षा का जो अन्तिम ध्येय है, उसकी पूर्ति वह नहीं कर पाती। हमारे प्राचीन संस्कृत विद्यालयों की यह विशेषता है, कि वे अपनी सीमित शक्ति के कारण यद्यपि एक साथ ही नाना विषयों के ज्ञान से छात्र को पूर्ण नहीं कर सकते, पर मनुष्यता के लिये जिन गुणों की आवश्यकता है उनका विकास वे अवश्य कर देते हैं।

प्राचीन संस्कृत विद्यालयों मे गुरुद्रोही होना एक सबसे भयंकर दोष था। इसके अतिरिक्त उन विद्यालयों के छात्र प्रातः, सायं, सन्ध्या, वन्दन आदि भी अवश्य करते थे, और अपने कार्यों को बारी-बारी से अपने आप करने में किसी प्रकार का भी सङ्कोच नहीं करते थे। फलतः, उस समय का छात्र, गुरुभक्त, नम्र, भगवद् भक्त, एवं आलस्य शून्य होता था।

आजकल के सेवा ग्राम आदि आदर्श शिक्षालयों मे भी यही सिखाया जाता है, कि छात्र अपने काम को अपने आप ही करना सीखे पर इस प्रकार के आदर्श विद्यालयों को छोड़, अंग्रेजी के अन्य विद्यालयों मे शिक्षा के आदर्शों की जो दशा हो रही है, वह सर्वथा दयनीय है। वहां के छात्र बात-बात मे गुरुजनों की निंदा, हड़ताल अथवा आपस की पार्टीबाजी मे एक दूसरे के शत्रु बन सकते हैं, परन्तु जहां किसी की सेवा गुरुजनों के आदर, अथवा ईश्वर स्मरण की कोई बात हो वहां उनमे मनुष्यत्व के लेशांश का भी दर्शन नहीं होता। अंग्रेजी के विद्यालयों मे इन दुर्गुणों की बाढ़ आ रही हो तो जाने दें, परन्तु सबसे महान् खेद इस बात का है, कि इनका अनुकरण आजकल हमारे संस्कृत छात्रों मे भी बहुत कम रूपमें बढ़ रहा है जो सज्जन आचार्य प्रवर श्री गोवर्द्धनप्रसाद जी का अभिनन्दन करना चाहते हैं,

कर्त्तव्य है वे इनका अभिनन्दन केवल शब्द मात्र से न कर व्यावहारिक रूप में करें। प्राचीन विद्वान् का हृदय उस समय होता है जब वह किसी व्यक्ति को, आचार-विचार के पालन एवं भक्ति में प्रवण देखता है।

के प्रेमी सज्जनों को चाहिए कि वे स्वतन्त्र भारत में, वास्त- की उद्भूति के लिए और राजस्थान की प्राचीन संस्कृत को रखने के लिए अपनी प्राचीन परम्पराओं की रक्षा करें।

यह तात्पर्य नहीं कि हम नवीनता का स्वागत न करें। भूगोल इतिहास एवं विज्ञान आदि के ज्ञान से भी हम को अवश्य होना है, पर सब से प्रधान जो हमारा आत्मज्ञान है रक्षा का लक्ष्य हमारा प्रधान लक्ष्य है। जबतक हम हमारे आत्मानुभूति के ज्ञान से सम्पन्न नहीं करते तब तक अन्य ज्ञान, अपितु जगती का सबसे बड़ा जाल है, उससे जगती एवं सुख का प्रसार नहीं हो सकता।

संस्कृत विद्यालयों की यही विशेषता थी कि वे इस प्रकाश करने में सबसे अधिक सफल होते थे। यह इस आलोक है कि भूमण्डल के अन्य देश आज भी इससे कुछ सीखना हैं। भगवान् करे हम हमारे इस लक्ष्य की रक्षा में ।



श्रद्धांजली

श्रीमती स्वर्णलता देवी एम० ए०

प्रिंसिपल—महारानी सुदर्शन कालेज, बीकानेर

श्री पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री का ५० वर्ष तक एक सार्वजनिक संस्था का संचालन और अध्यापन कार्य अति श्लाघनीय कृत्य है। आप संस्कृतके धुरन्धर विद्वान् हैं। श्री शास्त्रीजीने ऋषिकुल प्रणाली पर तारानगर में राजस्थान संस्कृत विद्यालय की स्थापना कर हमारी देवभाषाको मान प्रदान करते हुए साहित्य सेवा की है उसके लिये संस्कृत समाज चिरऋणी रहेगा। विद्यालयकी स्थापना कर के ५० वर्षों तक अवैतनिक सेवायें प्रदान करना आपके हार्दिक शिक्षा-प्रेम एवं आदर्श अध्यापक के गुणों का द्योतक है। ऐसे आदर्श गुरु के लिए छात्रों में प्रेम एवं सद्भाव का उमड़ना स्वाभाविक तथा अवश्यम्भावी है। पण्डित जी का जीवन अध्यापकवर्ग के लिये अनुकरणीय है तथा उनके शिष्यों की गुरुभक्ति विद्यार्थी वृन्द के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करती है। वर्तमान युग में इस प्रकार की संस्था व आदर्श गुरु शिष्य के मध्य ऐसी भावनाओं का बड़ा अभाव सा है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि ऐसे महानुभावों के जीवन से प्राप्त हुई प्रेरणा ऐसे अभावों की पूर्ति करे, श्री शास्त्रीजी दीर्घायु हों, उनके असंख्य शिष्य उत्तरोत्तर उन्नति को प्राप्त होते हुए उनके गुणों का प्रकाशन करें।

—स्वर्णलता अग्रवाल

[illegible]

[illegible]

श्री रामचन्द्र शास्त्रिण:

[illegible]

[illegible] संस्कृत [illegible]

[illegible]

[illegible] स्वर्णजयन्ती महोत्सव [illegible] अभिनन्दन ग्रन्थ-प्रकाशनस्य यो हि [illegible] प्रयत्नोऽनुष्ठीयते, स तस्य महत्त्वं गुरुगं-भीरार्यसमाज [illegible] संसूचयति।

[illegible] श्रीमद्‌ [illegible] सम्प्रदाय [illegible] सुधाभिन सत्प्रकृतिका विद्वांस सन्ति [illegible] प्रान्ते चिरात् [illegible] सर्वतोमुख [illegible] सामाजिकी सुव्यवस्थितिं [illegible] च महत् प्रयतन्ते। संस्कृत समाजे [illegible] प्रचाराय [illegible] चेष्टन्ते। [illegible] साधयितुमार्यसिद्धान्त [illegible] न्याय [illegible]।

वस्तुतस्त्वार्यसमाजे [illegible] गणनीया अस्मत्प्रान्ते, ये हि स्वार्थं पक्षपातं च परित्यज्य सर्वहितैषितयैव कार्यं कुर्युः।

आर्यसमाजा एव किं सन्मते तु सुदूरेऽपि प्रान्ते नास्ति कश्चिदपि साहसी यो हि गीर्वाणवाणीप्रचारे धर्मप्रचारे चास्मच्छ्रद्धेयानेतानति-शयितुमीशीत।

सद्धर्मनिःस्वार्थसेवकानां विविधविद्वद्भिः ख्यापितयशसां पण्डित-प्रकाण्डानां सुधाभिनां वयोवृद्धानां ज्ञानवृद्धानां चैतेषामभिनन्दनग्रन्था-र्पणेन सम्मानकरणं सर्वेषामपि एतत्प्रान्तपण्डितानामावश्यकं कर्तव्य-मासीद् यदनया स्वर्णजयन्ती महोत्सव समित्या सम्पाद्यैतत् प्रान्तीय-विद्वत्समाजे धर्मप्राणजनवर्गे चानुग्रहः प्रदर्श्यते।

अहं परमेश्वरतो विद्वत्प्रवराणामेतेषां कुशलं दीर्घायुष्यं च कामये।

स्नेहाधीनो—

रामचन्द्र शास्त्री

[illegible]

श्रीमान् पं० गौरीशङ्कर जी शास्त्री

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बीकानेर राज्यस्य विख्यात विद्वांसः

आदर्श कवयः, धुरीणलेखका

श्री रामचन्द्र शास्त्रिणः

एम० एल० ए०

बिहाणी संस्कृत विद्यालयाध्यक्षाः

संगरियामण्डीस्था ।

श्रीगोवर्द्धन स्वर्णजयन्ती महोत्सव स्वागत समित्याऽभिनन्दन ग्रन्थ-प्रकाशनस्य यो हि श्लाघ्यः प्रयत्नोऽनुष्ठीयते, स कस्य सहृदयस्य सुरगवीप्रणयिजनस्य स्वान्तोल्लासं नोपबृंहयति ।

इमेऽस्मच्छ्रद्धेयाः श्रीगोवर्द्धनप्रसाद शास्त्रिणोऽस्यप्रान्तस्य ख्यातवदुष्याः सुवाग्मिनः सत्प्रकृतिका विद्वांसः सन्ति । एभिरस्मिन् सकलेऽपि प्रान्ते चिरात् सद्धर्मस्य सर्वतोमुखः सत्प्रचारो विधीयते, सामाजिकीं सुव्यवस्थितिं सम्पादयितुं च महान् प्रयत्यते । संस्कृत समाजे जागर्ति-प्रचाराय चातीव चेष्टयते । आर्येष्वैक्यं साधयितुमापार्ष्णिमस्तकस्वेद-स्रावः क्रियते ।

वस्तुत एतादृक्षा मौन कार्यकर्तारः केवलमङ्गुलिपर्वस्वेव गणनीया अस्मत्प्रान्ते, ये हि स्वार्थं बाह्यप्रदर्शनं च परित्यज्य सर्वहितैषित्वेन कार्यं कुर्युः ।

अस्मत्प्रान्त एव किं मन्मते तु सुदूरेऽपि प्रान्ते नास्तिकश्चिदपि तादृक्षो यो हि गीर्वाणवाणीप्रचारे धर्मप्रचारे चास्मच्छ्रद्धेयानेतानति-शयितुमीशीत ।

सद्धर्मनिःस्वार्थसेवकानां विविधविद्वच्छिष्य ख्यापितयशसां पण्डित-प्रकाण्डानां सुवाग्मिनां वयोवृद्धानां ज्ञानवृद्धानां चैतेषामभिनन्दनग्रन्था-र्पणेन सन्मानकरणं सर्वेषामपि एतत्प्रान्तपण्डितानामावश्यकं कर्तव्य-मासीद् यदनया स्वर्णजयन्ती महोत्सव समित्या सम्पाद्यैतत् प्रान्तीय-विद्वत्समाजे धर्मप्राणजनवर्गे चानुग्रहः प्रदर्श्यते ।

अहं परमेश्वरतो विद्वत्प्रवराणामेतेषां कुशलं दीर्घायुष्ट्वं च कामये ।

स्नेहाधीनो—

रामचन्द्र शास्त्री

...भानु पं० नवरङ्गराय जी शास्त्री

...जी ने इस ... में निःस्वार्थ भाव से जो
...यो है यह किसी विद्याव्यसनी सज्जन से छिपी
...जैसे कर्मठ विद्वान, परोपकारी, त्यागी व्यक्ति पर
... सकता है। मुझे विश्वास है कि भविष्यत् में
... लिखा जायगा उसमें शास्त्री जी का नाम
...। मैं ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना करता हूं कि
...चिरायु करें।

भवदीय :—
श्री नवरङ्गराय जी शास्त्री



श्रीमान् पं० ओंकारनाथ जी लाटा

साहित्यायुर्वेदाचार्य प्र० संस्कृताध्यापक, सम्पत् दूगड़ विद्यालय,
सरदार शहर

सम्प्रति संस्कृत भाषा परिशीलमासु साहित्यरसिकेषु शिक्षाप्रचारायबद्धपरिकरेषु, शिक्षानुरागिषु, सनातनधर्मोद्धरणायविहितोद्यमेषु धर्मप्रचारकेषु च सज्जनेषु के नाम बीकानेर राज्यान्तगत तारानगर निवासिनाम् सुगृहीत नाम धेयानां विद्वत्तल्लजानां श्रीमतां गोवर्द्धन प्रसाद शास्त्रिणां पुण्यचरित्रेण परिचिता न स्युः। एते महानुभावाः अस्यां भारतवसुन्धरायां महाहरत्नम्। आशेशवा देववें सुरभारतीं राष्ट्रभाषाञ्चसेवमानाः पण्डित समाजे प्राकृतजनेषु च विपुलाकीर्तिमर्जितवन्तः एतेर्जीवने सनातनधर्मसेवैव कर्त्तव्यत्वेन प्रधानी कृतेति कः खलु न वेत्ति। तारानगरीय राजस्थान संस्कृत विद्यालये प्रधानाध्यापकपदम् संस्थापकपदम् सञ्चालकपदम् चालंकुर्वद्भिरेतैरध्यापिताबहवोऽन्तेवासिनः कृतविद्याः स्वपरीक्षामुत्तीर्य विभिन्न विद्यालयेषु सम्मानपूर्णस्थानमवापु. गुरोर्महिमानंवर्द्धयामासुः संस्कृत प्रचारञ्च विदधुः। विलक्षण भाषणशक्तिरेतेषाम् यद् विदग्धा अपि मुग्धा इव शृण्वन्तिश्रोतारोऽभिनन्दन्ति च सशिरः कम्पम्, श्रीमतां सुयोग्यौ तनयौ उमाशंकराचार्य परमानन्द शास्त्रिणावपि देशसमाजसाहित्यसेवातत्परौ सवत्र सम्मानभाजौ-स्वपितुस्वस्य च यशः प्रसारयन्तीति महान् प्रमोदावसरः। बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलनस्य तारानगरीय पञ्चाधिवेशने श्रीमतां सहयोग. श्रमः समुत्साहश्च स्मयन्तेऽधुनापि। ह्यकालं हारभूता पण्डित धोरेया कमठा अप्येते अगृहीहंकाराः सौशील्य विनय सन्तोष सौजन्यादि गुणरत्नानामाकर भूता आदर्श भूताश्च विराजन्ते इति नितरामाह्लादते नो मानसम्। परमश्रद्धास्पदा श्रीमन्तः दीघमायुः स्वस्थं वपु स्तथा सर्वविध सुख-सम्पत्तिश्चाधिगत्य बहूनि वर्षाणि भारतभुवमलं कुर्वन्तः विद्यारत्ना मान मुत्रयन्तः सुरगिरः सदप्रचाराय सेवायै यथावद् बद्धादराः धर्मान्नत्यं विहितमतयोऽस्मानानन्द यन्तस्सुखं मनेषन्निति भूयोभूय. श्री भगवचरणेषु प्रार्थयामहे।

विधेयः

ओंकारनाथ लाटा

श्री

श्रीमन्तः, फतहपुरिया सांग-वेद-विद्यालया-
... साहित्यव्याकरणज्योतिषाचार्याः प्रधानः

श्रीगोपाल चन्द्र शास्त्रिणः

...सः, आयुर्वेदविशारदाः, विद्यारत्नम्,
राजदुर्गः (विक्रमपुरम्)

तत्र भवतां पण्डित-मूर्धन्यायनां आत्र-संसदि लब्ध-शुभ-समज्ञानां, ... शास्त्रधुरीणानां, राजस्थान-केशरिणां श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी ... । स्वर्णजयन्ती महोत्सवे शुभकामनां प्रेषतो मम मनो-रत्नाकरे, ... लसदुल्लासलहरीपटलानि ।

प्रकृति-प्रत-घन-जाड्यान्धकार-पूरित-हृदयतया स्वोद्देश्यमार्गं गन्तु-... बाल-वृद्ध-वनितानां तारानगरीय-जनतानां स्वशास्त्रालोक-... परिभूय तमःसन्ततिं प्रकाशमार्गं दिग्दर्शयतां महात्मनामेषां ...ति शुभं नाम, सर्वेषां हृदय-पुटेषु अद्यापि अन्तस्तमो विध्वंसयत् ।

अशिक्षा-भुजगी-दंश-प्रसृमर-गरल-गतसंज्ञान्, द्विजाति-बालकान् ...यितुं श्रीराजस्थान संस्कृतविद्यालयाः साधारण भेषजमाविष्कुर्वा-... पूर्व-वैद्यानामेषां कर्मदं कस्य न मनःप्रसन्नतापारावारे निमज्जयति ।

न तारानगर एवापि तु बहुषु प्रदेशेषु संस्थापिताः संस्थाः एषां यशसा विस्तारयन्ति लोकोपकार-कर्म ।

महापुरुषाणामेषां जीवनं, ब्राह्मणानां, दीनानां, सुरभारत्याश्च सेवा-... सर्वदा व्यतीतं व्यत्येष्यति व्यत्येति चेति सन्तुष्यति नितान्तं ।

सम्प्रार्थ्यते भगवान् वेणुपाणिर्मुकुन्दः, दीर्घजीवनाय, हीरकजयन्ती-... च कर्मवीराणामेषाम् ।

बीकानेर राज्य साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष

श्रीमान् पं० बद्रीप्रसाद जी आचार्य

प्रिंसिपल :—

ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम चूरू

आचार्य वर !

आपको स्वर्णजयन्ती महोत्सवपर अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है, उसके लिए मैं भी कुछ लिखूं। बहुत ही इच्छा थी परन्तु समयाल्पता से कुछ अस्वस्थता से लिख नहीं सका इसका मुझे आत्मिक खेद है।

देव !

आपके लिए जो मेरे हृदय में स्थान है, अथवा आपके पवित्र चरणो में जो मेरा अनुराग है, उसे भाषा के शुष्क शब्दों में किस प्रकार व्यक्त कर सकूंगा समझ में नहीं आता ! आपने सुरभारती की जो सेवा की है एवं अपनी जाति के मुख्य कर्म पठन-पाठनादि को जिस प्रकार निभाकर दिखाया है, उसे कौन भूल सकता है।

मान्यवर !

आपकी विद्वता, सहृदयता, सौम्यता एवं मिलनसारिता तथा परोपकारिता आदि गुणों की छाप किसपर नहीं पड़ी ? कौन आपके व्यक्तित्व से प्रभावित नहीं हुआ ? आप ही का यह आशीर्वाद है कि मुझ जैसा अकिञ्चन भी उत्तर-दायित्वपूर्ण पदों पर आसीन है !

पतितपावन, आभीरकन्या मनोरञ्जन गोवर्द्धनधारी से विनम्र प्रार्थना है कि वे आपको चिरायु करें।

आपका :—

बद्रीप्रसाद आचार्य

श्रीमान् डाक्टर ओं प्रकाश जी गुप्त

इन्चार्ज स्टेट अस्पताल, तारानगर

हिन्दू संस्कृत के उत्तम सेनानी भारतीय गौरव के प्रतीक श्रद्धेय गोवर्द्धनप्रसाद जी शास्त्री की सेवा में समर्पित किये जानेवाले 'अभिनन्दन-ग्रन्थ में' ये पंक्तियां देते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। मुझे इन चार वर्षों में आपके साथ रहने का मौका मिला है, इतने समय में ही मैं आपकी ओर इतना आकृष्ट हुआ हूं कि कह सकता।

आज आपके हजारों शिष्य प्रशिष्य भारत के विभिन्न स्थलों में करते हुए आपका यश विस्तृत कर रहे हैं। मुझे ज्यादा लिखने का ...स नहीं है परन्तु यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि एक ख्यातिविद्वान् में जितने गुण चाहिये वे सब आप में हैं! दिग्गज ...होते हुए भी अभिमान आपको छू नहीं गया है। सम्पन्न होते ... आप अपने में ही मस्त ढीले-ढाले सौम्य वेश मे ही रहते हैं ...ड का नाम नहीं।

...र की कौनसी ऐसी संस्था है जिसके आप सञ्चालक, संस्थापक, ...दि न हों। कार्य करने की धुन आपमे विचित्र है; और उदारदिली ...।

... याद आता है जब बीकानेर राज्य सा० सम्मेलन पञ्चाधिवेशन ... में करने का निमन्त्रण आपके पुत्र निर्भय कई साथियों के तारानगर में ... ई आए। किन्तु नगर ने जब सुना तो सब एक ...कार में हो गए। उल्टा जबाब नत्थ किया जाने लगा। ... में बाबू आत्माराम दुवानी 'दुकान' चले गये; और पण्डित ...न जी भारग रह गये। पं० नारायण दत्त जी और निर्भय जी ...ोंने अपूर्व चेष्टा से जनता को अनुकूल बनाने की ओर

सफलता भी कुछ इन्हें मिली। परन्तु आपके ही विशेष पत्र-व्यवहार करने पर मंत्री शारदा चौधरी आदि ने आपके शिष्य होने के नाते ज्यादे से ज्यादे रकम दी जिसके फलस्वरूप ही सम्मेलन का षष्ठाधिवेशन बीकानेर राज्य भर में अभूतपूर्व हुआ।

सम्मेलन के दूसरे दिन आपने आगत सज्जनों को अपने घर भोज दिया जिसमें शहर के भी काफी आदमी शामिल थे, उसमें ३००) रु० अन्दाज व्यय हुए। सम्मेलन के प्राणाधार होने पर भी आपके मुंहसे ऐसा नहीं सुना गया कि सम्मेलन में हमने ऐसा किया, वैसा किया! वास्तव में भारत को आज ऐसे ही महापुरुषों की आवश्यकता है। आपके दो पुत्र हैं, दोनो ही विद्वान और सच्चरित्र हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आप चिरजीवी हों जिससे आनेवाली पीढ़ी भी आपसे बहुत कुछ सीख सके।

आपका :—

ओं प्रकाश गुप्ता



श्रीमान् डाक्टर ब्रह्मानन्द जी कोचर

एल० एम० पी० (सी० पी०) एल० सी० पी० एण्ड एस० (बम्बई)

मेडिकल ऑफिसर

स्टेट हस्पिटल तारानगर (बीकानेर)

मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय ... जीवन के ५० वर्ष पूरे कर ५१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इसी ...सर पर इसके सञ्चालक एवं अध्यापक श्री पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी ...जी का अभिनन्दन किया जा रहा है। यह हमारे लिए गौरव की ...त है।

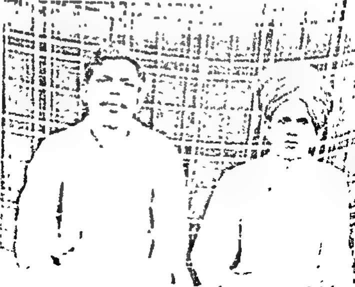
स्थानीय नागरिको से यह सुन कर बहुत आश्चय हुआ कि पूज्य ...डतजी ने विद्यालय की स्थापना एवं संचालन के लिए अत्यधिक ... किए हैं। तारानगर की प्रत्येक सार्वजनिक संस्था के जन्मदाता ... ही है। आपके दो सुपुत्र है, दोनों ही योग्य एवं कर्मठ हैं। ... सैंकड़ों शिष्य स्थान-स्थान पर जन-सेवा कर रहे है। मङ्गलमय ... आपको चिरजीवी करं, यही शुभकामना है।

आपका—

डा० बी. एन. कोचर



ामचन्द्र जी अध्यापक



श्रीमान् रामस्वरूप जी वकील, अग्रवाल "आजाद"

राजगढ़ (बीकानेर)

सन् १६०१ ईस्वी में मेरे स्वर्गीय पिता जी श्रद्धेय जानकी प्रसाद जी मुंशी तारानगर (रीनी) में सब-इंस्पेक्टर पुलिस थे। मैं अपने देश यू० पी० से तारानगर उसी समय आया था। उस समय मेरी आयु १३ वर्ष की थी, श्रीमान् पं० जी को आयु १८-१६ वर्ष को होगो। आपने तारानगर में करीब दो वर्ष पहले से श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय खोल रखा था। हमारा मकान विद्यालय के पास ही था। ऐसा सुनहला अवसर पाकर मैं भी पूज्य पण्डित जी से हिन्दी पढ़ा करता था, जब से अबतक मेरे परिवार पर पण्डित जी की कृपादृष्टि बनी हुई है।

पं० जी एक सात्विक विचार के सज्जन हैं। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' आपका प्रधान ध्येय रहा है। पूज्य पण्डित जी सभी शास्त्रों के ज्ञाता है। आपने सरसा फिरोजपुर, एवं बनारस में अध्ययन किया है। सत्य के प्रचार के लिए आपने बंगाल, बिहार, यू० पी०, मद्रास, उड़ीसा, बम्बई, आदि प्रान्तों का दौरा किया है। आप निर्भीक एवं स्पष्टवादी विद्वान् हैं।

आपके दो सुयोग्य पुत्र हैं, दोनों ही बड़े विद्वान्, सुशील व देशभक्त हैं। आपके बड़े पुत्र पण्डित उमाशंकर जी आयुर्वेद के आचार्य हैं। छोटे पं० परमानन्द जी हैं, जो शास्त्री हैं, और कवि तथा लेखक भी हैं।

पं० जी की इस स्वर्णजयन्ती पर मैं शुभकामना भेज रहा हूं। आशा है कि हीरकजयन्ती भी बड़ी धूमधामसे मनाई जायेगी।

भवदीय—

रामस्वरूप अग्रवाल "आजाद"

राजपूताना के प्रसिद्ध वैद्य, आयुर्वेद विशारद

पं० रामप्रसाद जी दीक्षित

सरदार शहर

मुझे यह जानकर परमानन्द-लाभ हुआ कि श्री पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री को उनके स्वर्णजयन्ती-महोत्सव पर अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया जायेगा। मुझे ऐसा लगा मानों मेरी अन्तरात्मा मुझे श्री पण्डित जी की सेवा में अपने हृदयोद्गार प्रकट करने को प्रेरित कर रही हो। अपने टूटे-फूटे शब्दों में मैं उनके यशोगान में कुछ अस्फुट विचार रख सकूंगा ऐसी आशा है।

आप आज से ३५-४० वर्ष पहले, जब कि बीकानेर रियासत में महोपदेशक एवं स्पष्ट वक्ताओं का नितान्त अभाव था, अपने लालित्य-पूर्ण भावव्यञ्जन एवं पाण्डित्यपूर्ण वक्तृत्व के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। उस समय आपने सनातनधर्म के पक्ष में बहुत अच्छा प्रचार किया था एवं इस दिशा में अब भी पूर्ण संलग्न हैं। इनके व्याख्यानों को सुनने का मुझे जब जब भी शुभावसर मिला, मेरे अन्तर में उन प्रवचनों की एक अमिट छाप अङ्कित होती गई।

अतएव हमारी जगन्नियंता से निरंतर प्रार्थना है कि वह श्रीयुत पण्डित जी को दीर्घायु करें जिससे कि वे माँ भारती की अधिकाधिक सेवा कर सकें।

रामप्रसाद दीक्षित वैद्य

कविराज पं० परमेश्वर प्रसाद वैद्य

आयुर्वेदाचार्य, प्रधान चिकित्सक सर्वजन हितैषी दातव्य औषधालय
राजगढ़ (बीकानेर)

मुझे यह ज्ञान कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय के छात्र एवं स्नातक मण्डल ने अपने उत्तरदायित्व को समझ कर श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय के संस्थापक श्रीमान् पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की अमूल्य जनहितकारी सेवाओं के उपलक्ष में उनके सम्मानार्थ श्री स्वर्णजयन्ती मनाने की योजना की है।

यह महोत्सव शास्त्री जी की सेवाओं के सामने नगण्य है किन्तु सम्मानकर्त्ता कार्यकर्त्ताओं ने अपना कर्त्तव्य समझ कर यह गौरवपूर्ण कार्य किया है।

राजस्थान में जब चारों ओर अविद्या का अन्धकार फैला हुआ था तब आपने शिक्षा प्रचार के लिए श्रीराजस्थान बीज वपन कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना शुरू किया था। आज उसी विद्यालय के सैकड़ों स्नातक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते हुए जन सेवा कर रहे हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि यह शास्त्री जी के चलाये हुए कार्य को चिरस्थायी रक्खें तथा पूज्य शास्त्री जी को दीर्घायु प्रदान करें।

भवदीय—
परमेश्वर प्रसाद वैद्य

श्रीमान् पं० ज्येष्ठानन्द जी वैद्य

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

श्री पं० [illegible] जी [illegible] की [illegible] विद्वत्ता, मधुर [illegible], [illegible], [illegible], एवं [illegible] किसी से छिपी नहीं है।

आप का ही प्रताप है कि [illegible] जैसे छोटे से शहर में श्री [illegible] प्रधान संस्कृत विद्यालय जैसी [illegible] में पढ़ने वालों संख्या ५० वर्षों से निरन्तर सुरभारती की अनुपम सेवा कर रही है।

आप को मैं चिरकाल से जानता हूं, आप के सद्गुणों से हर एक व्यक्ति आप की ओर सहज आकृष्ट हो जाता है।

आप जैसे, कर्त्तव्यनिष्ठ, दयालु, सुरभारती के अनन्य उपासक तथा शास्त्रों के धुरीण विद्वान् पर, हमारे, इस प्रान्त, राजस्थान को गर्व है।

हम ईश्वर से नतमस्तक होकर प्रार्थना करते हैं कि, आप का सदुपदेश एवं पथ-प्रदर्शकत्व हमें चिरकाल तक मिलता रहे।

श्री स्वर्णजयन्ती महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो, यही मेरी शुभ कामना है।

—ज्येष्ठानन्द वैद्य

श्रीमान् वैद्य भूरामल जी शर्मा आयुर्वेद विशारद

अध्यक्ष, तारानगर रिलीफ सोसायटी औषधालय (तारानगर)

श्रीमान् पं० श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री, राजस्थान के प्रकाण्ड विद्वान्, कर्मठ नेता एवं प्रतिष्ठित महापुरुष हैं। मैं आप से लगभग ४ वर्षों से परिचित हूं। आप ५० वर्ष से श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय, के संचालक व अध्यापक-पद को अलंकृत कर रहे हैं। मैं आप के, सौजन्य वैदुष्य, प्रतिभासम्पन्नत्वादि किन-किन गुणों पर प्रकाश डालूं ? आप सभी शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हैं, तारानगर की प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाओं के आद्य संस्थापक हैं। आप की योग्यता, कार्य-कुशलता एवं अध्यापनपटुता, प्रत्येक विद्वान् के लिए अनुकरणीय है। छात्रों के साथ आप का व्यवहार बहुत ही सुन्दर रहा है, इसी कारण विद्यालय में १५०० छात्र शिक्षा प्राप्त कर सफलतापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं।

आप के दो सुपुत्र हैं। ज्येष्ठ पुत्र कविराज श्री उमाशंकर जी आयुर्वेदाचार्य हैं, जो कि सेवा समिति औषधालय सरदार शहर में प्रधान वैद्य के पद पर काम कर रहे हैं। आप सरदार शहर की तरफ से कई बार प्रतिनिधि बन कर भी बाहर गये हैं। यह तारानगर के लिए अत्यन्त गर्व की बात है।

कनिष्ठ पुत्र साहित्यालंकार कवि एवं कहानी-लेखक पं० परमानन्द जी शास्त्री स्थानीय विद्यालय में अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। आप के कई एक संग्रह प्रकाशित होने जा रहे हैं।

पूज्य पं० जी की अमल धवल कीर्ति शुभ्रज्योत्स्ना की भांति भूतल पर प्रसरित रहेगी। आप के जीवन की साध सदा से यही रही है कि, किसी-न-किसी तरह 'सनातनधर्म' एवं 'संस्कृत विद्या' का प्रसार हो। आप ने अपने अमूल्य जीवन को इस विद्यालय की चतुर्दिक् उन्नति के लिए अर्पण कर रखा है। स्थायी कोष न होने पर भी आप इसे अच्छी अवस्था में चला रहे हैं।

पं० जी के रचनात्मक कार्यों को एक क्षुद्र प्राणी क्या गिना सकता है, यही समझ कर केवल भक्तिभाव से ही आप के स्वर्णजयन्ती महोत्सव पर अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित कर रहा हूं तथा ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना करता हूं कि आप का जीवनतरु सदा पल्लवित, पुष्पित एवं फलित रहे।

—वै० भूरामल शर्मा

श्रीमान पण्डित आशारामजी वैद्य

प्रधान चिकित्सक

जैन दिगम्बर शालन्य औषधालय तारानगर

श्रीमान् पण्डित गोवर्द्धन प्रसाद शास्त्री महोपदेशक द्वारा संस्कृत साहित्य एवं देश की ५० वर्ष तक की गयी सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें 'अभिनन्दनग्रन्थ' समर्पित करने का जो सङ्कल्प शिष्य एवं स्नातक मण्डल ने किया वह प्रशंसनीय है।

यदि तत्वदर्शी आंखों से देखा जाय तो पण्डित जी ही राजस्थान में ऐसे अकेले कर्मठ व्यक्ति दिखाई देते हैं, जिन्होंने ५० वर्ष तक अबाध गति से स्थायी कोष न रहने पर भी एक सार्वजनिक संस्था का नि:स्वार्थ भाव से सुचारु रूपेण सञ्चालन किया है।

विगत साहित्य सम्मेलन के पञ्चाधिवेशन में आपने जो कार्य किया उसे देखकर नवयुवक भी दंग रह गये। वास्तव में आपकी कार्य करने की प्रणाली ऐसी ही है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि आपका नेतृत्व देश को सदा प्राप्त होता रहे।

भवदीय

आशाराम वैद्य।

श्री बीरबल जी वैद्य

आयुर्वेदाचार्य, अध्यक्ष, श्री आर्य औषधालय, सेरड़ा (बीकानेर)

मुझे पं० श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्णजयन्ती पर बधाइयाँ भेजते हुए महान् हर्ष हो रहा है। यह महोत्सव राजस्थान में अपना एक निराला आदर्श रखता है। इसके संयोजकोंको कोटिश: धन्यवाद है जिन्हो ने एक महापुरुष का सम्मान करने में इस प्रकार के उत्सव का आयोजन किया।

पूज्य पं० जो प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान् प्रतीक है। आप के जीवन का अधिकतर भाग लोकोपकारी कार्यों में ही अधिक व्यतीत हुआ है।

परमेश्वर से प्रार्थना है कि यह उत्सव को सानन्द सम्पन्न कर पूज्य पण्डित जी को चिरायु करें।

वैद्य बीरबल शर्मा

दैवज्ञवर्य पं० चन्द्रभानु शर्मा वैद्य गांधी

पूज्य गुरुदेव के स्वर्णजयन्ती महोत्सव का समाचार पाकर हृदय आनन्द-विभोर हो उठा ; और स्मृति-पटलपर अंकित हो गया वह दृश्य, जिसमें कि पूज्य चरणों के समीप बैठ कर हम लोग परिणाम रमणीय, गुरुदेव के उपदेशों को श्रवण करते हुए स्वाध्याय किया करते थे।

गुरुवर हमें कितने स्नेह से पढ़ाया करते थे, उन्हें हमारी कितनी चिन्ता थी, तथा वे हमारे उत्थान को देखने के लिए कितने लालायित थे, यह वे ही जान सकते है, जिन्हो ने श्रीचरणों में रहकर कुछ अध्ययन किया है।

पूज्य गुरुदेव का वरदहस्त जिस किसी की पीठ पर पड़ जाता है, मानों उसके लिए, सुख-सम्पदाओ के द्वार सदा के लिए उन्मुक्त हो जाते है। यही कारण है कि आप का ऐसा कोई भी शिष्य नहीं जो कष्ट से काल-यापन करता हो। आसपास के लोगो में यह दृढ़ धारणा है कि कोई बेकार मनुष्य हो तो पण्डित जी के हाथ से भाषी ले आये, तत्क्षण उसकी बेकारी दूर भाग जाएगी।

मेरी शुभ कामना है कि परमपिता परमात्मा पूज्य गुरुदेव को चिरायु करें; जिससे राजस्थान के उज्ज्वल भविष्य-निर्माण में उचित सहयोग प्राप्त हो।

आप का तुच्छ शिष्य
चन्द्रभानु शर्मा

श्रीमान् पं० रूपरामजी वैद्य आयुर्वेदाचार्य

अध्यक्ष

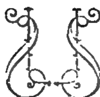
शङ्कर आयुर्वेद फार्मेसी (चूरू)

एतादृशो बुधजनो मरुभूतलेऽस्मिं—
स्त्वामन्तरा वद गुरो ! ननु विद्यते कः !
यश्छात्रपुञ्जहृदयस्थमहान्धकारं—
दूरेऽसितुं रविरिवाशु भवेत्समर्थः ॥१

त्वत्पादपङ्कजपराग शुभाञ्जनेन—
येनाक्षिणी पलुपिते अपि पाविते स्वे।
शास्त्रार्थबोधविषये नितरां कुशाग्रः
किं जायतां न स गुरोऽप्यविलम्बितेन ॥२

शुभाभिनन्दनं गुरो ! त्वदीयमेतदद्भुतं
समुल्लसन्मनःसु छात्रसंहतेर्विशेषतः।
लसद्गवीक्षविक्षहर्षवर्षमाशु पूरयन्
शिवाङ्कराष्टाक्षवीक्षितैर्नजेत्कृतार्थताम् ॥३

आभवो—
रूपराम वैद्यः



श्रीमान् पं० हनुमान प्रसादजी शर्मा बी० ए

अध्यक्ष

प्रौढ़ शिक्षा विभाग बीकानेर

मान्य श्री पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री, प्रधानाध्यापक श्री
स्थान संस्कृत विद्यालय तारानगर के कार्यकाल का स्वर्ण जयन्ती म
मनाया जाना, एक बड़े ही हर्ष एवं गौरव का विषय है। आद
के इतने लम्बे कार्यकाल को याद कर कौन ऐसा नागरिक हो
वस्तुतः हर्ष एवं गौरव का अनुभव न करे। यह सर्वथा स्वाभावि
पण्डितजी तारानगर की बहुत सी जनता के गुरु एवं श्रद्धा
मुझे भी कुछ समय के लिए उनके कार्य कलाप देखने का अवस
हुआ है; जब कि मैं तारानगर राजकीय विद्यालय में प्रधान
था। पं० जी उच्च श्रेणी के साहित्य-सेवी हैं। बीकानेर राज्य
सम्मेलन के षष्ठ अधिवेशन के तारानगर में आयोजन एवं सम्पा
श्रेय पं० जी को ही है।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वे पं० जी को नाग
सेवार्थ दीर्घायु करें; ताकि उनकी हीरक जयन्ती मनाकर अत्यधि
के अनुभव का सुअवसर प्राप्त हो।

॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

आपका

हनुमान प्रसाद सुरो

श्रीयुत जेठमल जी शर्मा

अध्यापक

स्टेट स्कूल तारानगर

हमारी प्राचीन शिक्षापद्धति गौरवमयी संस्कृति और परिशोधित आधुनिकता के प्रतीक परम पूज्य पं० जी के सफलता पूर्वक अर्द्ध शताब्दी तक अविरल शिक्षण कार्य करते रहने पर हम तारानगर वासियों को पूर्ण गर्व है।

पं० जी ने अपनी शान्त प्रकृति एवं अध्यापन कुशलता का विनियोग इस नगर की संस्कृत पाठशाला के लिए किया, यह उनका सुन्दर आभूषण और हमारा अहोभाग्य है।

मैं पं० जी को यह 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंट करना उनके श्रम के अनुकूल तो नहीं समझता ; पर श्रद्धावश यत्किञ्चित् किया है यह हमारे अपने लिए आत्मतुष्टि का एक साधन अवश्य है।

मैं ईश्वर से पं० जी के दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थना करता हुआ यह श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करता हूं।

किङ्कर—

जेठमल शर्मा



पं० मोतीलाल शर्मा बी. ए.

हेड मास्टर

स्टेट मिडिल स्कूल तारानगर

त्रशिरः सुमनोऽर्चित चरण !

आपकी स्वर्ण जयन्ती मनाने का विशाल आयोजन किया जा रहा यह जान कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

आपने संस्कृत साहित्यकी जो सेवा की है, हजारों छात्रों को शिक्षा है, अपने कर्तव्य को जिस सुन्दर ढंग से पालन करते हुए मृतप्राय ह्मण जाति में गम्भीर गर्जना द्वारा जो प्राण फूँके हैं, वे आने वाली न्तति के लिए अनुकरणीय रहेंगे। कौन ऐसा प्राणी है जो आप से लकर सत् साहित्य एवं सनातन धर्म के प्रति हठात् आकर्षित न हो ता हो। आज हमें ऐसे ही महापुरुषों की आवश्यकता है जो ऋृंखल जनता को सही मार्ग पर ला सके। ईश्वर आपको दीर्घ यो करे।

आपका

मोतीलाल शर्मा।



श्रीयुत माल चन्द्र वर्मा "विशारद"

अध्यापक

स्टेट मिडिल स्कूल 'तारानगर'

आज प्रार्थना है ईश्वर से
स्वर्ण जयन्ती मने तुम्हारी
शहनाई के स्वर में !

सेवा व्रत के महा पुजारी
जय होवे गुरुदेव ! तुम्हारी
पृथ्वी पर घर-घर में !

प्राणिमात्र सुलबुल हो जगमें
गूंजेगी नभ और धरा में
देव प्रतिज्ञा तेरी !

आज सभी श्रम सफल हुआ है
मिटी निशायें घोर अंधेरी ।
बनी सफलता चेरी ।

ऐसा आशीर्वाद हमें दो
देश धर्म की रक्षा के हित
प्राण समर्पण कर दें ।

छात्र आपके जब चाहें तब
मुर्दों में भी जान डाल कर
नई चेतना भर दें !

—मालचन्द्र वर्मा

शिव प्रसाद जी गुप्त

हेड मास्टर

स्टेट स्कूल राजलदेसर (बीकानेर)

...ी की स्वर्ण जयन्ती मनाने का समाचार मिला, पढ़ कर ... । पूज्य पं० जी के इस महोत्सव का मैं स्वागत करता ...दय जो हमारे प्रान्त के वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, एवं विद्यावृद्ध ...ी विशाल एवं ठोस सेवाओं से बीकानेर को यह भूभाग ... परिचित है। श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय जैसी ...पने सुदीर्घ काल तक चलना कोई हँसी खेल नहीं है, ...पूज्य उत्साह एवं अध्यवसाय पूर्वक अपने लगाये [illegible] ...वित एवं पुष्पित बनाने की चेष्टा में लगे रहे।

... पर मैं अपनी ओर से शुभ कामना भेज रहा हूं तथा ...र्घायु के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूं।

भवदीय

शिव प्रसाद गुप्त।

॥ श्रीः ॥

श्री पं० मुरलीधर जी सारस्वत

बी० ए० साहित्य रत्न, अध्यक्ष
हिन्दी विद्यापीठ चूरू।

परम श्रद्धेय पं० श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री के दर्शन का सौभाग्य बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन के षष्ठाधिवेशन में मिला। आपकी गम्भीर मुद्रा एवं कार्यसंलग्नता ही आपकी महत्ता की परिचायक थी। पूज्य पं० जी ने बड़ी संलग्नता के साथ देश की सेवा की है, उनका इस क्षेत्र में जितना सम्मान किया जावे वह थोड़ा है!

परम आदरणीय शास्त्री जी ने अध्यापन में अपने जीवन का अमूल्य अवसर प्रदान किया है, सैकड़ों बालकों को आपने सचाई और विवेक की कसौटी पर कस कर खरा उतारा है।

पूज्य पं० जी की पावन-स्मृति से ही हृदय आनन्द विभोर हो उठता है।

श्री स्वर्णजयन्ती महोत्सव की सफलता मैं हृदय से चाहता हूं। पतित पावन भगवान् कृष्ण हमारे कर्मठ, नेता को सद्दीर्घायु प्रदान करें।

मुरलीधर सारस्वत

श्रीमती गुलाब देवी कौशिक

प्रधानाध्यापिका

बालिका पाठशाला तारानगर

श्रद्धेय पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्णजयन्ती जानकर मुझे परम प्रसन्नता हुई। विद्यालय के छात्रों ने इस गौरवपूर्ण कार्य का आयोजन कर भारतीय संस्कृति के प्रतीक का जो अर्चन किया है वह सराहनीय है।

आप संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। षट्शास्त्र में आपकी अप्रतिहत गति है।

मैं जिस संस्था में कार्य करती हूं, वह पौदा इसी महापुरुष का लगाया हुआ है जो आज वृक्ष का रूप धारण करता जा रहा है। जिसमें हजारों बालिकायें अध्ययन कर अपने भविष्य को उज्ज्वल एवं गौरवमय करने में समर्थ हो रही हैं। आशा है आपके सहयोग से भविष्य में यह संस्था और भी वृद्धि को प्राप्त होगी, अतः आपका जितना भी सम्मान किया जाय, थोड़ा है!

यही नहीं यहां का सार्वजनिक पुस्तकालय भी आपके शिक्षाप्रसार-प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है। सबसे पहले आपने ही अपनी पुस्तकें देकर इसका नामकरण किया—ऐसा सुनने में आता है।

आपसे मेरा सीधा सम्पर्क न होने पर भी, आपके कनिष्ठ पुत्र भाई परमानन्द से विशेष स्नेह है, जिससे आपकी विद्वत्ता, सुजनता, दयालुता, कर्मठता एवं स्नेहप्रवणता का यदा-कदा परिचय मिलता रहता है। आपका सारा परिवार विद्वान् है।

तारानगर की कौन-सी ऐसी संस्था है जिसके आप प्रधान हितैषी न हों।

ऐसे महापुरुष के लिये मैं श्री जगन्नियन्ता परमेश्वर से प्रार्थना करती हूं कि वह इनको चिरायु करें, जिससे संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि होती रहे।

गुलाब देवी कौशिक



श्रीमती स्वर्णलता देवी
प्रिंसिपल महारानी सुदर्शन कॉलेज (बीकानेर)



श्रीमती लाडली देवी रैणा
[illegible] ([illegible])

श्रीमती गुलाब देवी कौशिक

प्रधानाध्यापिका

बालिका पाठशाला बारानगर

श्रद्धेय पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्णजयन्ती जानकर मुझे रम प्रसन्नता हुई। विद्यालय के छात्रों ने इस गौरवपूर्ण कार्य का ायोजन कर भारतीय संस्कृति के प्रतीक का जो अर्चन किया है वह राहनीय है।

आप संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। षट्शास्त्र में आपकी प्रतिहत गति है।

मैं जिस संस्था में कार्य करती हूं, वह पौदा इसी महापुरुष का गाया हुआ है जो आज वृक्ष का रूप धारण करता जा रहा है। सर्में हजारों बालिकायें अध्ययन कर अपने भविष्य को उज्ज्वल वं गौरवमय करने में समर्थ हो रही हैं। आशा है आपके सहयोग से विष्य में यह संस्था और भी वृद्धि को प्राप्त होगी, अतः आपका जितना ी सम्मान किया जाय, थोड़ा है।

यही नहीं यहां का सार्वजनिक पुस्तकालय भी आपके शिक्षाप्रसार-म का ज्वलन्त उदाहरण है। सबसे पहले आपने ही अपनी पुस्तकें कर इसका नामकरण किया—ऐसा सुनने में आता है।

आपसे मेरा सीधा सम्पर्क न होने पर भी, आपके कनिष्ठ पुत्र भाई रमानन्द से विशेष स्नेह है, जिससे आपकी विद्वत्ता, सुजनता, यालुता, कर्मठता एवं स्नेहप्रवणता का यदा-कदा परिचय मिलता रहता । आपका सारा परिवार विद्वान् है।

बारानगर की कौन-सी ऐसी संस्था है जिसके आप प्रधान हितैषी हों।

ऐसे महापुरुष के लिये मैं श्री जगन्नियन्ता परमेश्वर से प्रार्थना रती हूं कि वह इनको चिरायु करें, जिससे संस्कृत साहित्य की अभि-द्धि होती रहे।

गुलाब देवी कौशिक



श्रीमती स्वर्णलता देवी

प्रिंसिपल महारानी सुदर्शन कॉलेज (बीकानेर)



श्रीमती साहनी देवी वैद्य

[illegible]



आयुर्वेदाचार्य

बन्धुद्वय



परमानन्द शास्त्री



श्री दीपचन्द्र शर्मा

संस्कृताध्यापक

ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया (बीकानेर)

"अरे महाराज, कुछ याद किया कर, सुख पायेगा" वयोवृद्ध गुरुदेव के छात्रावस्था में कटु लगनेवाले तथा भविष्य में शिव-वरदान रूप ये शब्द आज भी मेरे कानोंमें गूंजते हैं।

कितनी सुन्दर शिक्षा है! कितनी सरसता टपकती है!! कहते ही बनता है। पूज्य गुरुजी की प्रकाण्ड विद्वत्ता, भाषाशैली एवं आकर्षण शक्ति आदि विशेषताएँ वर्णनीय हैं।

मैं प्रायः लोगों से कहा करता हूं कि "हमारे गुरुजी इतने वृद्ध होने पर भी कभी चश्मा नहीं लगाते" उन्हें आजकल के नवयुवकों से अधिक दिखाई पड़ता है, यह शब्द मैं कितने गर्वके साथ कहता हूं, यह मेरा हृदय ही जानता है।

मैं शुद्ध सनातन ब्रह्म से यही प्रार्थना करता हू कि पूज्य गुरुदेव इसी तरह हमें शिक्षा देते रहें।

आपका चरण सेवकः—
दीप चन्द्र शर्मा




श्रीमान् मनीरामजी चौधरी

अध्यक्ष

तहसील कांग्रेस कमेटी मारानगर

मान्यवर,

श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय द्वारा आपने जो संस्कृत साहित्य की सेवा की है, वह सदा, आनेवाली पीढ़ी को कार्यक्षेत्र में उतरने के लिये प्रोत्साहन देती रहेगी। हमारा देश बहुत वर्षों से अशिक्षा के गर्त में पड़ कर स्वत्व को भूल चुका था, इधर-उधर इने-गिने लोग शिक्षित कहलाते थे। उस समय आपने इस शिक्षण संस्था को स्थापित कर भारत की स्वतन्त्रता के सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा प्रचार का आरम्भ किया था। शिक्षा ही मनुष्य को कार्यक्षेत्रमें उतरने की प्रेरणा देती है। शिक्षा ही कायर में जान डाल कर होनहार सैनिक बनाकर मातृभूमि के लिये सर्वस्व की बाजी लगा देनेवाला विजेता तैयार करती है। ऐसी शिक्षा देने में ही जिस महापुरुषने अपना जीवन लगा दिया हो उसकी जितनी पूजा की जाय थोड़ी ही है। आप हमारे प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आप सीधे-सादे वेष में रहने वाले सुशील, सन्तोषी एवं सच्चरित्र हैं।

आज हमारे देश के लिए बातें न बना कर हृदय से कर्तव्य-पालन करने वाले आप जैसे सत्पुरुषों की आवश्यकता है।

इस समय आप के हजारों शिष्य भारत के प्रान्त-प्रान्त में अज्ञानता का नाश कर रहे हैं एवं आप की उज्ज्वल कीर्ति के विस्तार में चार चांद लगा रहे हैं।

आप के दो पुत्र हैं। दोनों ही देशभक्त एवं कर्मठ व्यक्ति हैं। श्री जगन्नियन्ता से प्रार्थना है कि वह पूज्य पण्डित जी को चिरायु करे जिससे हम अधिकाधिक लाभ उठा सकें।

भवदीय—

मनीराम चौधरी

श्री महावीर प्रसाद शारदा

पूज्य गुरुदेव !

गुरु का स्थान कितना ऊँचा है, यह मुझ-जैसा प्राणी क्या समझ सकता है, फिर भी यह जानता हूं कि गुरु-ऋण एक महान् ऋण है। दिन-रात सेवा करने पर भी क्या शिष्य इस महान् ऋण से छूट सकता है ? इस में सन्देह ही है।

महर्षि कल्प !

आप हमारे कुलगुरु हैं। आप ही के आशीर्वाद से हमारा कुल फूल-फल रहा है। मैं किस रूप से आप का अभिनन्दन करूँ ? जो कुछ इस जीवन में मिला वह आप ही की कृपा से। उन्हीं हृदय-भावों को श्रीचरणों में भेंट कर ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह पूज्य गुरुदेव को चिरजीवी करे।

आप का शिष्य—
महावीर प्रसाद शारदा



श्रीमान् महावीर प्रसाद जी कन्दोई

श्रीमान पण्डित गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्णजयन्ती कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। आप तारानगर के ही नहीं स राजस्थान के प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति हैं। श्री राजस्थान संस्कृत विद्या के आप संस्थापक हैं। आप ने इस संस्था की उन्नति करने के अपने जीवन का अधिकतर समय लगाया है।

आप के ही परिश्रम के कारण आज यह संस्था अपने ५० पूर्ण कर अपने संस्थापक का अधिकाधिक सम्मान कराने में स हुई है। आप सचरित्र परोपकारी एवं मिलनसार व्यक्ति हैं। विद्व होने के साथ-साथ आप सार्वजनिक कार्यकर्त्ता भी हैं।

तारानगर में जितने भी लोकोपकारी कार्य हैं उन सब में व जितनी सार्वजनिक संस्थाएँ हैं उनमें, पण्डित जी का मुख्य हाथ रहा आप ने नवयुवकों को जन-हितकारी कार्यों में अग्रसर होने को सर्व प्रोत्साहित किया है। भारतीय संस्कृति के आप पक्के अनुयायी है आप तारानगरके ब्राह्मण समाज में सब से प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

पण्डित जी के दो पुत्र हैं दोनों ही विद्वान्, सचरित्र एवं सार्वजनि कार्यों में काफी दिलचस्पी लेते हैं।

स्वर्ण महोत्सव सफल हो तथा पण्डित जी सपरिवार प्रसन्न रहें यही भगवान् से प्रार्थना है।

सेवक—

महावीर प्रसाद कन्दोई

श्री गोपाल कृष्ण धाँगड़ 'कानपुर'

आज उस महापुरुष के लिए शुभकामना भेजते हुए परम हर्ष हो रहा है कि जिसने अपने जीवन के ५० वर्ष सार्वजनिक कार्यों में व्यतीत किए हैं। मैं पूज्यपाद पण्डितराज श्रद्धेय गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री को अच्छी तरह से जानता हूं। इन-सा सन्तोषी, सच्चरित्र एवं कर्तव्यपरायण, अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान् देखने में नहीं आया। आप मेरे मातृकुल के श्रद्धेय कुल-गुरु हैं। आप से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

आप के दो सुपुत्र हैं, दोनों ही विद्वान्, देशभक्त एवं कर्मवीर हैं। बड़े श्री उमाशङ्कर जी आयुर्वेदाचार्य हैं, जो सिद्धहस्त चिकित्सक हैं। आप आजकल सेवा समिति दातव्य औषधालय के अध्यक्ष हैं तथा सरदार शहर कांग्रेस कमेटी के प्रधान कार्यकर्ता हैं, और एक लाख जनता की ओर से राजपूताना प्रा० कां० के प्रमुख रीजनल कौंसिल के सदस्य भी हैं। छोटे, साहित्यालंकार पं० परमानन्द शास्त्री निर्भय, विशारद हैं, आप अपने पिता जी की तरह प्रतिभा-सम्पन्न हंसमुख एवं मिलनसार व्यक्ति हैं, इसके अतिरिक्त कहानी-लेखक एवं कवि भी हैं। आप से मेरा बहुत ही स्नेह है।

अन्त में ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना है कि पूज्य चरण की यह स्वर्ण-जयन्ती सानन्द सम्पन्न हो तथा पण्डित जी चिरजीवन प्राप्त कर हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें।

गोपालकृष्ण धांगड़

दैवज्ञवर्य, वैद्यमनीषी

पञ्चाङ्गकर्ता

श्री मान् पं० गिरिधारीलल जी

ज्योतिषशास्त्री (नोहर)

पूज्यपाद गुरुदेव की स्वर्णजयन्ती जानकर अन्तस्तल में अत्यन्त आनन्द हुआ। आप जैसे कर्मठ विद्वान्, एवं शिष्य हितैषी गुरु का जितना भी सम्मान किया जाय थोड़ा है। आपने श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय की स्थापना कर अबोध शिशु-समाज को ज्ञान की पवित्र पयस्विनी में अवगाहन करा कर उन्हें क्रिया क्षेत्र में अग्रसर होने का जो सुयोग दिया है, उसके लिए संस्कृत समाज ही नहीं, प्रत्युत सारा भारत भी आपका चिर-ऋणी रहेगा।

ईश्वर करे आपका पथ प्रदर्शन हमें चिर काल तक मिलता रहे।

किङ्कर

गिरिधारीलाल

तारानगर के उत्साही कार्यकर्ता, तहसील
कांग्रेस-कमेटी के सेक्रेटरी प्रतिभासम्पन्न
नव युवक

श्रीयुत आशाराम दूदानी

आदरणीय गुरुदेव,

आपके स्वर्णजयन्ती महोत्सव मनाने का आयोजन बड़े उत्साह एवं हर्ष से. किया जा रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् इस कार्य में भाग लेकर अपना अहो भाग्य समझते है। मैं भी अपने हृदय के भावों को अपनी भाषा में व्यक्त कर सकूंगा इसमें सन्देह है।

तपोधन !

मैं यह बिना हिचकिचाहट के कह सकता हूं कि आपके जीवन का प्रत्येक कार्य शिक्षाप्रद एवं अनुकरणीय है। आपने ब्राह्मण जाति को ही नहीं अपितु प्रत्येक जाति को उज्ज्वल शिक्षा एवं सदुपदेश देकर कर्त्तव्यशील बनाने की चेष्टा की है, वह किसी से छिपी नहीं है। ब्राह्मण जाति के मनुनिर्दिष्ट कर्मों को अपने जीवन में उतारने का जो प्रयत्न आपने किया है वह स्तुत्य है। ऐसी ही कर्त्तव्य निष्ट विद्वान के चरणों में मस्तक टेक कर अन्तर्दाह-शमन किया जाता है। आपके इस अभिनन्दन पर मेरी हार्दिक शुभ कामना यही है कि आपकी हीरक जयन्ती मनाने का सुअवसर भी हमें प्राप्त हो।

सेवक
आशाराम दूदानी

पं० गङ्गाजल जी शर्मा

मु० नोहर (बीकानेर)

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि श्रद्धेय गुरुदेव की स्वर्णजयन्ती मनाने का आयोजन किया जा रहा है, आप इस सम्मान के सर्वथा योग्य हैं। आप ने अपने जीवन में कितने लोकोपकारी कार्य किये हैं, यह तो वे ही जानते हैं, जो आप के चरणों में सर्वदा निवास करते हैं। आज तारानगर में जितने भी संस्था रूपी महीरुह अपनी छाया से लोगों को सानन्द दे रहे हैं, उन सब का बीजारोपण पूज्य गुरुदेव के ही कर-कमलों से हुआ है। रंक से लेकर राजा तक प्रत्येक प्राणी के हृदय में आप के लिए वही भाव है जो भगवान् राम और कृष्ण के लिए है। आप के उपदेश और विद्याध्ययन काल की स्मृति आते ही हृदय में आनन्द छा जाता है।

विश्वम्भर भगवान् से विनय है कि वह जयन्ती सफल कर

श्रीमान् गङ्गाजल जी सुखानी

श्रद्धेय गुरुदेव पण्डित श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्ण-
जयन्ती जान कर अत्यानन्द हुआ। भारतीय संस्कृति के
अनुसार आप इस सम्मान के सर्वथा योग्य हैं। आपने
बड़े परिश्रम से श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय का
सुदीर्घ ५० वर्ष तक सञ्चालन किया है
सुरभारती, प्राचीन संस्कृत एवं देश
की सेवा का पवित्र भाव आपके
हृदय में कूट-कूट कर

भरा हुआ है। आपके उपदेशामृत का पान कर अनेक स्त्री-पुरुषों ने
अपनी ज्ञान पिपासा शान्त की है। मङ्गलमय
हरि से प्रार्थना है कि वह आपको चिरायु करें
हम लोगों को आपकी हीरक-जयन्ती
दिखाये।

—गङ्गाजल सुखानी

श्रीमान् पण्डित मनुदत्त जी शर्मा

सम्पादक

साप्ताहिक 'ज्ञानोदय' हिसार।

जब मैंने यह सुना कि राजस्थान संस्कृत विद्यालय तारानगर की स्वर्ण जयन्ती की तैयारियाँ की जा रही हैं, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; और मैं तुरन्त समझ गया कि यह योजना पं० गोवर्द्धन प्रसादजी शास्त्री की ५० वर्षीय अविचल तपस्या का ही फल है। आपने उक्त विद्यालय में रहते हुए विद्या दान द्वारा समाज की जो सेवा ५० वर्ष तक की है, वह सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

आपका जीवन सदा परन्तु उच्च भावोपेत ही रहा है। लगभग बीस वर्ष की बात हो चुकी, जब मैं तारानगर आने को उद्यत था; उस समय मेरे पिताजी ने कहा कि तुम तारानगर से श्री पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री के दर्शन किये बिना वापस मत आना। मैंने भी पिताजी की आज्ञानुसार पूज्य पण्डित जी के दर्शन किये। उनके साथ वार्तालाप करने से मैं ठीक समझ गया कि पूज्य पिताजी ने जो गुण पण्डित जी में बताये थे वे सब के सब मैं प्रत्यक्ष रूपसे अनुभव कर रहा हूं। उनकी सौम्यता सौजन्यता, तथा भावोच्चता से मैं बहुत आकर्षित हुआ। तभी से मेरी श्रद्धा पं० जी के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। मैं ही क्या, बल्कि जिस किसी ने आपके एक बार दर्शन कर लिए वह तुरन्त आपकी मिलन सारिता से प्रभावित हो गया।

आपने स्वल्प जीविका साधन होते हुए भी वे ब्राह्मणोचित कार्य कर दिखलाये जो एक धनी ब्राह्मण नहीं कर सकता। अतः आपके सन्तोष साहस और धैर्य का प्रभाव छात्र एवं पठित समाज पर पड़ना अनिवार्य है। मैं आशा करता हूं कि आप अपनी सन्तान तथा शिष्य मण्डली के लिए ऐसा कार्य क्षेत्र तैयार कर जायेंगे, जिनमें उन्हें देश तथा जाति की सेवा करने का अवसर मिलता रहेगा। मेरी यह भी कामना है कि आपका अनुकरण प्रत्येक संस्कृत पण्डित करे। आज के स्वतन्त्र भारत में आप जैसे गुणी और मेधावी पण्डितों की अत्यन्त आवश्यकता है। अन्त में यही शुभ कामना है कि आपकी शुद्ध एवं उन्नत आत्मा का आशीर्वाद हमें सदा मिलता रहे॥

भवदीय

मनुदत्त शर्मा।

श्रीगोपाल गोशाला

प्रधान मन्त्री
तारानगर

आचार्यवर,

आपकी स्वर्ण जयन्ती जान कर गोशाला को जितनी खुशी हुई है वह अकथनीय है, क्योंकि सर्व प्रथम श्री गलकनाथ जी की प्रेरणा से आपने तीन मास तक लगातार "गो पालन" और "गो सेवा के लाभ" पर व्याख्यान देकर स्थानीय जनता को आकर्षित करके इस पवित्र आश्रम की स्थापना की। श्री तोलाराम जी सेठको भी आपने जमीन देने के लिए तैयार किया। वह जैनी था तो भी उसने गोशाला के लिए भूमि दे दी। आज उसी जगह गोशाला का मकान है। विद्यालय में ही सर्व प्रथम यह मीटिङ्ग हुई जिसमें गोशाला का चन्दा लिखा गया। समय समय पर आपने गोशालाके उत्तरदायित्वपूर्ण सभापति, सहकारी सभापति आदि पदपर रहकर इसकी बहुत-बहुत सेवा की है। आप हमारे नगर के माने हुए यशस्वी विद्वान् हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आप चिरजीवी हों।

विनीत
श्री गोपाल गोशाला

श्रीयुत भजन लाल पंसारी

मन्त्री

श्री हरिकीर्तन संघ तारानगर

गुरुदेव,

वैसे तो आप गुरु होनेके नाते ही पूज्य हैं, परन्तु मैं जिस संस्थाकी ओर से यह श्रद्धाञ्जलि भेंट करता हूं, वह भी आपके ही द्वारा संस्थापित की गई है।

जब इस नगरी में 'कीर्तन' शब्द को भी, कोई नहीं जानता था, उस समय सर्व प्रथम आपके ही विद्यालय में सर्वसाधारण मनोहारिणी, मनोरम सुमधुर हरि धुन' लगी थी, और उसे देखकर तारानगर निवासी चकित हो गए। इसके बाद ३ अखण्ड हरिकीर्तन यज्ञ भी इस नगर में हो चुके हैं।

आचार्य,

आप व्याकरण दर्शन, साहित्य आदिके केवल पण्डित ही नहीं हैं, परन्तु भगवान् कृष्ण और शङ्कर के अत्यन्त उपासक भी हैं।' श्रीमद्भागवत महापुराण, एवं श्रीमद्भागवद्गीता की कथा आप 'इतनी सुन्दर रोचक' एवं मनोहर करते हैं कि श्रोता गण, उस समय चित्र लिखित से होकर भगवान् के ध्यान में तल्लीन हो जाते हैं।

आप तारानगर की प्रत्येक संस्थाओं के आपसंस्थापक हैं श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय के तो आप प्राण ही हैं। आप ही का प्रबल प्रताप है कि प्रचुर व्यय से चलने वाली यह संस्था अच्छी तरह से चल रही है। ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना है कि वे आपको चिरायु कर हमें आपकी हीरक जयन्ती मनाने का भी मौका दें।

आपका

भजनलाल पंसारी।

पं० रामचन्द्र शर्मा "विशारद"

मन्त्री

मनोरञ्जन क्लब तारानगर

पूज्यपाद वयोवृद्ध गुरुदेव के चरण कमलोंमें पुष्परूपी दो शब्द भेंट करना अपना मुख्य कर्तव्य समझता हूं। आपके इस विशाल एवं अभूत पूर्व अभिनन्दन समारोह को देखकर यह मनोरञ्जन क्लब अपूर्व आनन्द का आस्वादन कर रहा है।

श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय, श्री सार्वजनिक पुस्तकालय जैसी उपयोगी संस्थाएँ आपके ही सतत-प्रयास एवं शिक्षा-प्रेमका सुन्दर फल है। आप में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप जिस कार्य को हाथ में लेते हैं; उसे पूर्ण करके ही छोड़ते हैं, श्री बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन का पञ्चाधिवेशन का इस नगर में सम्पन्न होना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस नगर की समस्त सार्वजनिक संस्थाओं का बीजारोपण आपके ही कर कमलों से हुआ है। इस मनोरञ्जन क्लब को भी आपका प्रोत्साहन समय-समय पर मिलता रहता है। उस अनादि शक्ति से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वह हमारे पथ प्रदर्शक को चिरायु करे।

भवदीय

रामचन्द्र शर्मा

श्रीयुत पुष्करदत्त शर्मा "विशारद" विद्याभूषण

मन्त्री

श्री ब्राह्मण पञ्चायत महासभा तारानगर

यह सुनकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि तारानगर के सम्माननीय वयोवृद्ध विद्वर श्रीमान् पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री की स्वर्ण जयन्ती मनाई जा रही है। पूज्यास्पद पण्डितजी की साहित्य एवं जन सेवा को ध्यानमें रखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता था कि उनका विस्तृत स्वागत किया जाय। इस नगर की तात्कालिक अन्धकारमय स्थितिमें 'श्री राजस्थान संस्कृत विद्यालय को जन्म देकर आपने केवल शिक्षा की दिशामें ही एक नव प्रेरणा नहीं दी, प्रत्युत धार्मिक एवं सामाजिक दिशा में भी प्रशंसनीय निर्देशन किया है। सामाजिक दिशा में आप ही के सतत प्रयास के फलस्वरूप इस 'श्री ब्राह्मण पञ्चायत महासभा' की स्थापना हुई थी। आपके अनवरत परिश्रम का परिचय केवल इसी से मिल जाता है कि अल्पसमय में ही 'ब्राह्मण पञ्चायत महासभा' की आर्थिक स्थिति सभी प्रकार से सन्तोष जनक हो गई है। आप प्रारम्भ से अबतक इस संस्थाके अध्यक्ष पद पर आसीन रहते हुए इसका सुचारु रूपसे सञ्चालन कर रहे हैं।

यह संस्था आपकी स्वर्ण जयन्ती पर हार्दिक शुभ कामना प्रकट करती हुई अपने को कृत-कृत्य समझ रही है।

निवेदकः—

पुष्करदत्त शर्मा



रमेश्वर प्रसाद जी
आयुर्वेदाचार्य



गुलराज जी गोस्वामी
आयुर्वेदाचार्य



डा० पी० एन० चोपर



वैद्य चन्द्रभानु जी शर्मा

पण्डित प्रवर डाक्टर हजारीप्रसाद जी द्विवेदी

साहित्याचार्य

अध्यक्ष—हिन्दी-विभाग, शान्तिनिकेतन, बोलपुर

हमारे देश की सहस्रों वर्ष व्यापी साधना का सुफल संस्कृत भाषा में संचित है। हमारी उपेक्षा के कारण इस भाषा के लिखे अनेक ग्रन्थरत्न नष्ट हो गये हैं। पिछली दो शताब्दी की पराधीनता ने हमारी स्वाधीन चिन्ता को बड़ा धक्का पहुँचाया है। हम अपनी स्वस्थ्य परम्परा से विछिन्न हो गये हैं। संस्कृत के साथ हमने संस्कृत के विद्वानों की भी उपेक्षा की है। ऐसे ही दुर्दिन में जिन लोगों ने ज्ञान के प्रदीप को जलते रखा है और अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसकी रक्षा की है, वे सर्वथा अभिनन्दनीय हैं। सब ओर की उपेक्षा के भीतर से भी उन्होंने अपने प्रिय विषय की सेवा तन-मन-धन समझकर की है। ऐसे विद्वानों का मूल्य भारतवर्ष आज नहीं तो निकट भविष्य में अवश्य समझेगा। इन्हीं लोगों के तप से भारतवर्ष का सर्वोत्तम साहित्य नष्ट होने से बचा है। ऐसे विद्वानों में श्री राजस्थान संस्कृत पाठशाला, बारानगर के अध्यापक एवं संस्थापक पं० गोवर्द्धन प्रसादजी शास्त्री अन्यतम हैं। आज उनके मित्रों ने और शिष्यों ने उनका अभिनन्दन करने का निश्चय करके देश का उचित सम्मान किया है। इस अवसर पर मैं भी पंडितजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

ह० द्विवेदी

राजनीति विशारद

श्रीमान् नानूराम जी सुराना

तारानगर (बीकानेर)

मान्यवर !

हम तारानगर निवासियों के लिए महान् सौभाग्य का विषय है कि इस नगर में एक ऐसी विभूति पैदा हुई, जिसकी आज स्वर्णजयन्ती मनायी जा रही है।

श्रद्धेय शास्त्री जी को मैं बाल्यावस्था से ही जानता हूं। आप सभी शास्त्रों के विद्वान् हैं और बड़े ही बुद्धिमान् सौम्यप्रकृतिहंसमुख एवं उदार हैं। आपने तारानगर की सभी सार्वजनिक संस्थाओं के उच्चतम पदों पर आसीन हो उनका सञ्चालन किया है। आप हमारे शहर के ही नहीं अपितु बृहद्राजस्थान के माने हुए विद्वान् हैं। आपके दोनों पुत्र अपने-अपने विषय आयुर्वेद और ज्योतिष् के होनहार हैं। श्री महावीर स्वामी आपको सपरिवार सुखी रखे यही मेरी शुभ-कामना है।

आपका

नानूराम सुराना

श्रीमान् सेठ कालूरामजी शारदा

राजस्थान प्रान्त में जब अज्ञानान्धकार की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं, उस समय पूज्य गुरुजी ने इस विशाल संस्था की नींव डाली थी। उस समय संवत् १९५६ में इधर-उधर बीस-बीस कोस तक कोई ऐसी शिक्षा संस्था नहीं थी। उस समय आप बनारस से अध्ययन कर के ही लौटे थे। स्थानीय शिक्षा-प्रेमियों की प्रेरणा से अन्यान्य स्थानों से बुलाहट होने पर भी मातृभूमि से स्नेह होने के नाते आपने यहीं रहकर कार्य किया। आपके ही परिश्रम का फल है कि आज यह संस्था इतनी उन्नति पर है।

आप हमारे गुरु हैं, प्रत्येक शास्त्र में पूर्ण प्रवेश रखते हैं। कर्मकाण्ड के तो आप सूर्य ही हैं। सारानगर की सभी संस्थाओं के आप सच्चे हितैषी हैं। अभी आपने एक ब्राह्मण पञ्चायत सभा स्थापित की है, जिसमें दरी, पलंग, बर्तन, आदि लोकोपकारी वस्तु प्रदत्त की गई हैं। सभा के भवन के लिए आपने १५०० वर्ग गज भूमि दी है। आप दयार्द्र हृदय एवं पूर्ण सन्तोषी हैं।

आपके दो पुत्र हैं, दोनों ही कर्मठ एवं विद्वान् हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे शिवस्वरूप गुरुदेव को चिर काल तक जीवित रखें जिससे संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि होती रहे।

—छाजूराम शारदा

राजनीति विशारद

श्रीमान् नानूराम जी सुराना

तारानगर (बीकानेर)

मान्यवर !

हम तारानगर निवासियों के लिए महान् सौभाग्य का विषय है कि इस नगर में एक ऐसी विभूति पैदा हुई, जिसकी आज स्वर्णजयन्ती मनायी जा रही है।

श्रद्धेय शास्त्री जी को मैं बाल्यावस्था से ही जानता हूं। आप सभी शास्त्रों के विद्वान् हैं और बड़े ही बुद्धिमान् सौम्यप्रकृतिहंसमुख एवं उदार हैं। आपने तारानगर की सभी सार्वजनिक संस्थाओं के उच्चतम पदों पर आसीन हो उनका सञ्चालन किया है। आप हमारे शहर के ही नहीं अपितु वृहद्राजस्थान के माने हुए विद्वान् हैं। आपके दोनों पुत्र अपने-अपने विषय आयुर्वेद और ज्योतिष् के होनहार हैं। श्री महावीर स्वामी आपको सपरिवार सुखी रखे यही मेरी शुभ-कामना है।

आपका

नानूराम सुराना

श्रीमान् सेठ कालूरामजी शारदा

राजस्थान प्रान्त में जब अज्ञानान्धकार की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं, उस समय पूज्य गुरूजी ने इस विशाल संस्था की नींव डाली थी। उस समय संवत् १९६३ में इधर-उधर बीस-बीस कोस तक कोई ऐसी शिक्षा संस्था नहीं थी। इस समय आप बनारस से अध्ययन कर के ही लौटे थे। स्थानीय शिक्षा-प्रेमियों की प्रेरणा से अन्यान्य स्थानों से बुलाहट होने पर भी मातृभूमि से स्नेह होने के नाते आपने यहीं रहकर कार्य किया। आपके ही परिश्रम का फल है कि आज यह संस्था इतनी उन्नति पर है।

आप हमारे गुरु हैं, प्रत्येक शास्त्र में पूर्ण प्रवेश रखते हैं। कर्मकाण्ड के तो आप सूर्य ही हैं। वारानगर की सभी संस्थाओं के आप सच्चे हितैषी हैं। अभी आपने एक ब्राह्मण पञ्चायत सभा स्थापित की है, जिसमें दरी, पलंग, बर्तन, आदि लोकोपकारी वस्तु एकत्र की गई हैं। सभा के भवन के लिए आपने २५०० दर गज भूमि दी है। आप दयार्द्र हृदय एवं पूर्ण सन्तोषी हैं।

आपके दो पुत्र हैं, दोनों ही कर्मठ एवं विद्वान् हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे शिवरूप गुरुदेव को चिर काल तक जीवित रखें जिससे संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि होती रहे।

—कालूराम शारदा

श्रीमान् पं० रावतमल शर्मा "कर्मकाण्डकोविदः"

तारानगर (बीकानेर)

क्वाहं गुरो ! प्रतिभया रहितो जडेन्द्र-
स्ते चापि कुत्र भुवनत्रयराजिकीर्तिः।
त्वामेव मे हृदि कृतस्थितिमावलम्ब्य
किञ्चित्प्रवक्तुमिह वत्सरता वहामि ॥१

अग्रेसरिन् ! मतिमतां गुणिनां गरिष्ठ !
वेदान्तिवादिपटलेऽपि च लब्धकीर्ते !
विद्वंस्तवैव शुभ एष महाप्रभावो
यन्मादृशोऽपि वहते निगमप्रवेशम् ॥२

एतां स्वर्णजयन्तीं पण्डितवंशावतंस ! शास्त्रज्ञ !
सफलां चरीकरीतात् सोमः शम्भुः सदाशिवो भगवान् ॥

श्रीमताम्—
रावतमल शर्मा

कविवर जयनारायण शर्मा

बेतिया (चम्पारन)

आज प्रातराश के पहले ही
प्रिय छात्रवृन्द का प्रेषित
एक लिफाफा
मिला !
चढ़ा चश्मा आंखों पर
मैंने
जल्दी से खोला।
वर्तुलाकार सुनहरे अक्षरों में
लाल स्याही से छपा हुआ।
गुरुभार जयन्ती का लेकर
था देवदूत सा बना हुआ !

* * * *

आई मुन्ने की माँ सहसा
दूर खड़ी पढ़ शीर्षक
बोली
किसकी नाथ ! जयन्ती है ?
गुरुकुल वाले गुरुदेव की
रेतों वाले महादेव की
हाँ ! हाँ !!
जिसने कर्मयोगी बन
मुक्त हस्त हो
अर्ध शताब्द तक
खूब लुटाया
निज प्यारा धन
अमर भारती लिया।

* * * *

आओ प्रेयसि !
शुद्ध हृदय हो
देवाधिदेवसे
करें प्रार्थना
चिर जीवो
गुरुदेव हमारे
कीर्ति रहे
अनवद्या

आपका शिष्य—
जयनारायण।

कविराज श्री गुलराज जी गोस्वामी

आयुर्वेदाचार्य भिषग्रत्न, वैद्यभूषण M. B. H. सरदार शहर

श्रीमान् पूज्यवर पण्डित प्रवर गुणागण्य श्री गोर्धन प्रसाद जी शास्त्री महोपदेशक, वेद वेदांग और दूसरे शास्त्रों के पारंगत होते हुए भी व्याकरण के दिग्गज विद्वान और महा यशस्वी नेता हैं! आज स्वतन्त्र भारत में आप से शिक्षा पाये हुए सैकड़ों अच्छे-अच्छे नामी धुरन्धर विद्वान पाये जाते हैं अतः आप गुरुओं गुरु हैं।

राजस्थान में सर्वोपरि संस्कृत साहित्य की तारानगर संस्कृत पाठशाला में निरंतर पचास वर्षों तक शिक्षा देकर प्रायः सब ही जातियों को और विशेषकर ब्राह्मण जाति को जो शिक्षा दान दिया है, और समय-समय पर ब्राह्मण सभाओं में योग देकर जो सामाजिक सेवा की है उसके लिये हम सब ही आपके ऋणी हैं, देश और ब्राह्मण जाति को आप पर गर्व है। गो-सेवा, लोक-सेवा, जाति-सेवा और साहित्य-सेवा आदि सम्पूर्ण गुणो में महोपदेशक जी ने उच्च कोटि का नाम पाया है। एतदर्थ मैं भक्तिपूर्वक शुद्ध हृदय से आपका अभिनन्दन करता हूं।

आपके ज्येष्ठ पुत्र हमारे सुहृद् प्रेमी पंडितप्रवर उमाशंकर जी आयुर्वेदाचार्य हैं, जो बड़े यशस्वी वैद्यराज और कांग्रेस के नामी नेताओं में हैं और हमारे शहर की आयुर्वेदादि सब संस्थाओं में आपका पूर्ण सहयोग रहता है। राजपूताना प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की कार्यकारिणी के आप सदस्य हैं। आप स्थानीय गोशाला के प्रधान मंत्री है, बड़ी लगन के साथ तन-मन-धन से गो-सेवा में तत्पर है। आपके कनिष्ठ पुत्र पं परमानन्द जी शास्त्री भी पूर्ण विद्वान् एवं योग्य व्यक्ति हैं। आपकी स्वर्ण जयन्ती होने से मुझे अत्यन्त हर्ष है।

मैं परब्रह्म परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि पुत्र-पौत्रादि परिवार सहित पूज्य पण्डित जी को दीर्घायु प्रदान करें।

भवदीय
गुलराज गोस्वामी

श्रीमान् पं० कुरुक्षेत्र शर्मा कविरत्न आयुर्वेदभिषक्

गान्धी (बीकानेर)

हे शीलपुञ्ज ! हे महापुरुष !
हे धर्मवीर ! हे हे वरिष्ठ !
हे विद्वानों में अग्रगण्य !
हे छात्रगणों के गुरु वसिष्ठ ॥१॥

पूर्ण हुई है बहुत दिनों से
आज हमारी मनः कामना,
अन्तः स्थल में झलकरही थी
वर्षों से जो शुभ भावना ॥२॥

जगती तलमे बच्चा-बच्चा
देव तुम्हारी करे आरती,
अप्रतिहत हो सदन-सदन में
रहे गूँजती देव भारती ॥३॥

चरण किङ्कर
कुरुक्षेत्र।

श्री दुर्गादत्त शर्मा अध्यापक

पूज्यवर गुरुदेव !

आपके गुण वर्णन का काम तो मुझ जैसे अबोध व्यक्ति की कल्पना शक्ति के भी बाहर की बात है, मैं तो आपके चरणों का ध्यान रख कर ही दो शब्द लिखने का साहस कर सकता हूं ।

तपस्विन् !

जब आप आसन पर बैठ कर हमें शास्त्र शिक्षा दिया करते थे उस दृश्य की स्मृति आते ही हृदय में आनन्द का पारावार उमड़ पड़ता है। जब आप शास्त्रीय विषयों को लेकर धारा प्रवाह रूप से भाषण दिया करते थे, उस समय आपके सिंहनाद को सुनकर नास्तिकों के हृदय में खलबली मच जाया करती थी।

कर्म योगिन् !

आप के ही परिश्रम का फल है कि तारानगर में आज इतनी लोकोपकारी संस्थायें विद्यमान हैं। आपके गुणों में इतनी शक्ति है कि वे राजाओं तक को अपनी ओर हठात् आकृष्ट कर लेते हैं महाराज गङ्गा सिंह जी एवं श्री शार्दूल सिंह जी बहादुर जब तारानगर पधारा करते थे तब आपके दर्शनों के लिये बहुत ही उत्कण्ठा रखा करते थे।

विद्वद्रत्न !

आपकी सुरभारती सेवा अनुकरणीय है, परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह स्वर्ण जयन्ती महोत्सव को सफल करे तथा आपको सपरिवार प्रसन्न रखे ॥

—दुर्गादत्त शर्मा

सारानगर के प्रसिद्ध कवि एवं कुशल कहानी लेखक,
साहित्यालङ्कार एवं भविष्यद्वक्ता

श्रीयुत कविवर—"निर्भय"

मुकुलित हृदय सरोज आज विकसित होता है
प्रमद पुलक तारों में उठता है मृदु स्पन्दन !।
तम आकुल मस्तिष्कदरी भी चामीकर रुचि—
नव आलोक विभासित हो करती अभिनन्दन ॥१

आज हुई स्वच्छन्द लेखनी युग-युग बद्धा
जागरूक हो उठी प्रसुप्ता कवि-कविताएँ।
शतशताब्द पद पतित शृङ्खला छिन्न हुई है
हृद्-जलनिधि में हुई प्रवाहित रस-सरिताएँ ॥२

जिसकी सिन्धु गम्भीर गर्जना को सुन कर के
किल्बिषका कम्पित हो जाता है अन्तस्तल !।
धर्म--धारि—धौरेय--सुशोभित वसुन्धरा भी
मुदितमना होती चुम्बित कर जिसका पदतल ! ॥३

जिस कर्मठ के चरण युगल में झुक जाती हैं
श्रद्धा से, उत्तुङ्ग धरणि शासन मूर्धावलि !।
उसी महा महनीय धीर के चरणों में यह,
अर्पित है नव एक अकिञ्चन की श्रद्धाञ्जलि ॥४

विधेय—
"निर्भय"

श्रीमान् सेठ मेघराज जी पचीसिया

नोहर (बीकानेर)

पूज्यपाद गुरुदेव के स्वर्णजयन्ती महोत्सव को सुन कर अत्यधिक आनन्द हुआ। आप की बृहत्तर सेवाओं के उपलक्ष में आप के अभिनन्दन का श्लाघनीय विचार कर इसके कार्यकर्त्ताओं ने जो उचित कदम बढ़ाया है इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

गुरुवर !

क्रान्ति के इस भीषण युग में अतिक्रान्तमर्याद लोगों को शान्ति का सन्देश देने के लिए आप-जैसे दृढ़-प्रतिज्ञ सच्चे महोपदेशक की अत्यधिक आवश्यकता है। आशा है, ईश्वर आपको चिरायु कर हमारी उस आवश्यकता को अवश्य पूर्ण करेंगे।

आपका—
मेघराज पचीसिया

श्रीमान् सेठ मुरलीधर जी खेमाणी

तारानगर (बीकानेर)

तारानगर-रत्न श्रीमान् पं० गोवर्द्धन प्रसाद जी शास्त्री महोपदेशक को श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए अत्यधिक हर्ष हो रहा है।

तारानगर जो आज इस रूप में है, यदि आपका सहयोग न हो पाता तो, सम्भव है अज्ञान-अन्धकार में ठोकरें खाता होता, वस्तुतः तारानगर की समस्त जन-सेवा एवं जनोपकार का सारा श्रेय आपको ही है।

आपके इस अभिनन्दन-पर्व पर मेरे परिवार की ओर से आपको बधाई है। हम इस महोत्सव की सफलता हृदय से चाहते हैं।

भवदीय—
मुरलीधर खेमाणी

कुसुमांजलि

उपहर्ता :—

श्रीयुत लक्ष्मीनारायण शर्मा बी० कॉम०

कलकत्ता

राम जन्म के पुण्य पर्व में
मरु-वसुधा के बीच धर्म में।
ओढ़ कसूमल मंजु शाटिका
विद्वानों के बीच शर्म से
देव! जयन्ती तुम्हें वरेगी ॥१

वह शुभ्रवर्ण श्री सितवसना
जो सत्प्रताप की है जननी।
हो वक्षभार से उत्पीड़ित
सौन्दर्य भार से लदी हुई
कीर्ति तुम्हारे चरण पड़ेगी ॥२

हे देव! भूलकर भी जिसको
था नहीं कदाचित् स्थान दिया।
वह कमलकोमला आकर्षित हो
महाचञ्चला स्वर्लक्ष्मी भी
बरबस तेरे चरण चढ़ेगी ॥३

॥ प्रस्थानगीतिः ॥

(कविवर—"चन्द्रमौलि")

गीयताम् गायक ! त्वया:
विप्लवमयी प्रस्थानगीतिः

जागृयाः जागरणसमयः
सप्तस्वरे परिवर्तनम् स्यात्
ईदृशीं वाद्य विपंचीम्
येन जगतो नर्तनं स्यात्
लीयतां स्वान्तं सुधायाम्
गीतिकायाः औवंलोके
जायतामुत्साह सम्पत्
प्लायतां दुर्दैन्यभीतिः
गीयतां गायक ! त्वया:
विप्लवमयी प्रस्थानगीतिः

जयपराजय
यत्रनिधनं जीव
अस्तुवासो ज
रम्यमावसथं वनं
यत्र वीरा एधमान
विजयिनःशंसान् धमेयुः
शिक्ष्यतां प्रलयंकरीयम्
संगरस्य नव्य रीतिः
गीयतां गायक ! त्वया:
विप्लवमयी प्रस्थानगीतिः

नायिकायाः हावभाव—
वर्णने शक्तिर्न यायात्
अद्य पुनरपि पतनगर्ते
भारतमहि सुविलायात्
अशरणां भारतीयकविताम्
कवि समाजः साधुपायात्
उन्नयत कवयः! समाजम्
माधिकं पुरतोऽनुग्लायात्
दर्श्य तामादर्शभूता
उन्नतेरियमाशु नीतिः

गीयतां गायक ! त्वया:
विप्लवमयी प्रस्थानगीतिः

प्रतीक्षा

नारद एकस्मिन् दिने भ्रमन् सुरालयमाच[1] ।
हरिणा भारत भावुकं पृष्टश्चेत्थमुवाच ॥१॥

भो मनोनिरोधशिक्षक ! क्षितौ नरा
वृद्धकामकोपलोभमोहमत्सराः ॥
नो नियन्तुमीशते मनोऽतिचञ्चलं
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥२॥

यैरकारि बाडवैः[2] स्वधर्ममण्डनं
वेदयुक्तिभिः पुरा विधर्मखण्डनम् ॥
दर्शयन्ति ते हि धर्मनाशि कौशलं
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥३॥

बाहुजैः सुरेश ! हा ! सुरा प्रपीयते
न प्रजाभिरक्षणे प्रभोऽवधीयते ॥
रम्यते विजातिजाभिरस्यते पलं
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥४॥

नैगमा विभोऽप्यनल्पधैर्यधीधनाः
कार्ष्यपाशुपाल्यनैगमत्वजीवनाः ॥
अक्षदेवितामवाप्य कुर्वते छलं
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥५॥

प्रक्रियां[3] विनाऽपि वेदवागधीतिनः
प्रांशुपीठसंस्थिता यथोपवीतिनः ॥
पादजा यदाचरन्ति तद् गिराऽप्यलं
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥६॥

नेति तेऽग्रजन्मबाहुजाऽर्यपादजा[4]
भूतलोद्धृतिं विधातुमीशते प्रजाः ॥
आश्रयस्त्वमेव "रामचन्द्र !" केवलं
त्वां प्रतीक्षते ततो हरे ! धरातलम् ॥७॥

---

१. 'अतु गतौ सातत्ये च' इति भौवादिकाद् धातोर्लिटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपमिदम् । २. ब्राह्मणैः । ३. अधिकारम् "[illegible]" इत्यर्थः । प्रांशवो विप्रा अपि यदाचरन्तीत्यन्वयः । ४. इति-एवम् (उक्त प्रकारेण) अग्रजन्मबाहु-जार्यपादजास्ते सब प्रजास्तास्ता भूतलोद्धृतिं विधातुं नेशते नैव समर्थाः सन्तीत्यर्थः ।

कलकत्ता के ख्याति प्राप्त

नवयुवक-श्रीनेमचन्दजी बी० कॉम

संचालक :—

इस्टर्न ओवरसीज एजेन्सी कलकत्ता

शिक्षा मन्त्री

बालिका शिक्षा सदन कलकत्ता।

श्रद्धेय पं० गोवर्द्धन प्रसादजी की स्वर्ण जयन्ती का समाचा[र] अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वास्तव में तारानगर में कोई व्यक्ति [है] जिसकी जयन्ती समारोह पूर्वक मनाई जा सकती है तो उसके [अधि]कारी केवल पण्डित जी ही हो सकते हैं।

तारानगर का शायद ही कोई ऐसा सार्वजनिक कार्य हो [जिसमें] पण्डितजी का सक्रिय सहयोग न रहा हो। पुराने एवं नये विचा[रों में] सहयोग स्थापित करने में आपने हमेशा चेष्टा की है।

सौम्य प्रकृति-सहृदयता एवं कार्य पटुता के कारण आप सदा [सभी] सम्प्रदाय एवं विचारों में आदरणीय रहे हैं। निर्मल चरित्र के स[ाथ-] साथ आपमें अद्भुत पाण्डित्य का समावेश विद्वानों के लिये अनुकर[णीय] आदर्श रहा है जिसके लिये समस्त तारानगर को गर्व हो सकता [है।] सर्व साधारण में सम्मानित रहने के साथ-साथ आप राजकीय क्षेत्र [में] भी सदा आदर की दृष्टि से देखे गये हैं, आप वर्षों तक म्युनिसि[पल] बोर्ड के मेम्बर रहे हैं।

तारानगर का राजस्थान संस्कृत विद्यालय, जिसके आप संस्थाप[क] सञ्चालक एवं प्राण हैं, सर्वदा ऋणी रहेगा। आप अभी बहुत अ[धिक समय] तक तारानगर की सेवा में सचेष्ट रहें यही हमारी सतत अभिलाषा [है।]

नेमचन्द



मदनलाल जी बावलिया



पं० पुष्करदत्त जी बा





बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध सेठ

रायसाहब वृद्धिचन्दजी कर्वा

प्रधान संचालक :—

सालिगराम राय चुन्नीलाल बहादुर एण्ड कम्पनी,

डिब्रूगढ़ (आसाम)

श्री पं० गोवर्द्धन प्रसादजी शास्त्री महोपदेशक, के दर्शनों का शुभ अवसर मुझे कई दफा मिला है, मैं आपकी विद्वता, सादगी एवं सचाई से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ।

आपने चारानगर ऐसे स्थान में ५० वर्ष तक श्रीराजस्थान संस्कृत विद्यालय का संस्थापन संचालन एवं अध्यापन कर पंडित समुदाय के समक्ष अद्वितीय उदाहरण उपस्थित किया है।

आपके ज्येष्ठ पुत्र वैद्यराज उमाशंकराचार्य मेरे नितान्त परिचित बन्धुओं में से हैं। यदाकदा उनके साथ वार्तालाप कर मैं महोपदेशक जी को और भी अधिक श्रद्धा करने लग गया हूँ। परमात्मा महोपदेशकजी को सपरिवार सुख समृद्धि पूर्ण करें।

भवदीय

वृद्धिचंद कर्वा



॥ श्रीहरिः ॥

किं वेदे योगिकतामात्रं विद्यते !

निबन्धः

श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री सारस्वतः

विद्यावागीशः, विद्यानिधिः, विद्याभूषणः ।

प्रिन्सिपल

श्री रामदल संस्कृत हिन्दी महाविद्यालयः देहली

अद्यत्वे वेदानां स्वानुचरत्वविधानार्थं तेभ्यः स्वकीयार्वाचीन निःसारणार्थं च वादिनां भूयान् प्रयत्नो बोभूयमानो विद्यते, तत्र संस्कृत सतर्कता आश्रयणीया। एतदुक्तं भवति—वेदे कुत्र ईदृशि वर्णनानि विद सनातनधर्म सिद्धान्तानां पुराणादिस्थानामेकवाक्यता सिध्यति। प्रत्यर्थिभिस्तद् असह्यं मत्वा तादृशस्थलेषु वेदस्य योगिकताव्याजं क अनर्थः क्रियते।

तेषामयमभिसन्धिः—

'वेदे यौगिका एव शब्दाः सन्ति न रूढा योगरूढा वा' इति। स्व यास्कस्य 'सर्वाण्याख्यातजानि नामानि' (नि० १।१२।२) इति सिद्धान्तं सं पर मयं तेषां व्याजस्तत्रैव उपतिष्ठते, यत्र पुराणपोषकं स्थलं पौराणिक शं वेदे भवेत्। अन्यत्रतु पुराण विषयात् तटस्थे वेदस्थले ते स्वयमेव "गोक्षीर २।२६।४) 'सूर्य' (अथ० १।१०।३४) 'पृथिवी' (अ० १२।१।१) पिप्पल ६।१०६।१) 'गुग्गुलु' (अ० १६।३८।१) 'पृश्निपर्णी' (अ० २।२५।१२) 'द ५।३१।६) 'क्रिमि' (अ० ५।३३।३) 'आर्य' (ऋ० ६।६३।५) एतदादि शब्दान् रूढ योगरूढवद् व्याचक्षते। यदि वयं तदीय सर्वसूचीमेकत्र कुर्य एकं लघु पुस्तकं सज्जीस्यात्। अत्र संस्कृतस्य परिनिष्ठित विद्वद्भिरवश्यं अवलम्बनीया।

(२) वस्तुवस्तु वादिनामेष राद्धान्तो यद् वेदे, यौगिकतामात्रं योगरूढिर्वा—इति सर्वथा निर्मूलः स्वार्थसाधकश्च। वेदे प्रकरणादि

रूढ़ा अपि शब्दाः सन्ति, यौगिका अपि योगरूढ़ा अपि सन्ति, यौगिकरूढ़ा अपि यन्तु यौगिकता मात्रोपष्ठम्भने नैरुक्त सिद्धान्तः संकेत्यते, तत्र तेषामेव भ्रान्तिः, खलु यास्कस्य तादृश आशयः।

यास्कस्य सिद्धान्तः साधीयान अस्तियत् सर्वाणि संस्कृतानि नामानि आख्यातजानि। किमपि नाम आख्यात रहितं न भवति। कामं तद् रू योगरूढं वा स्यात्—इति तदभिसन्धिः। परमदसीयं तात्पर्यमिदं नास्ति यद् वे यौगिका एव शब्दाः सन्ति; नेतरे इति। अस्यतु इदं तात्पर्यं यद् न केवलं वे (यतो हि तेनात्र वेदनाम नोपात्तम्) प्रत्युत सर्वत्रैव, कामंलोकः स्याद् वेदो वा नामानि आख्यात जानिएव। अतएव लौकिकामरकोषादीनां सुधाख्यव्याख्या दिषु रूढ़-योगरूढ़ादीनामपिशब्दानां प्रकृतिप्रत्ययप्रदर्शनमुखेन व्युत्पत्तयः कृत सन्ति।

परं यस्मिन् नाम्नि तत्तदाख्याते विद्यमानेऽपि तत्तदाख्यातानुसारी अर्थ नोपलभ्यते, सरूढ़िशब्दः, अर्थात्तत्र रूढ्या अर्थो भवति। यथा आर्यसमाजिन स्वामिदयानन्देनापि 'नामिकस्य' द्वितीयपृष्ठे लिखितम्—"रूढ़ि उसको कहते हैं जिसमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ न घटता हो किन्तु ये संज्ञादि बोधक हो जैसे रूढ़ा शाला, माला इत्यादि" एतेन स्वामिनो वचनेन सिध्यति यद् रूढ़िशब्देऽपि शब्दान्तरवत् प्रकृति प्रत्ययास्तु भवन्ति केवलं तस्मिन् प्रकृति प्रत्ययार्थो न संपद्यते— इति। एतेन अस्मत्पक्ष सिद्धिः। अतो वेदे ईदृशशब्दानां दुरापता नास्ति।

यथा वा—'चित्रकर्मणि कुशलः' अत्र "सर्वाणि आख्यात जानि नामानि" इति सिद्धान्तत्वात् 'कुशान्लाति' इति आख्यातानुसारमर्थः, सच मुख्यः, परंत प्रकृते अनुपपन्नतया रूढ्या चतुरार्थे पर्यवस्यति। इयमेवास्य शब्दस्याख्यातत्वेऽपि रूढ़िता नाम। अतएव 'मीमांसा दर्शनस्य' 'शाबरभाष्येति प्रोक्तम्—कुशल प्रवीण इति, बहुषु कुशानां लातृगुणेषु सत्सु निपुणतायामेव कुशल शब्दो रोहन् रूढ़िशब्द एव भवति। बहुषु च वीणावादस्य गुणेषु सत्सु निपुणे एव प्रवीणशब्दो वर्तमानो रूढ़ इत्युच्यते। तस्मात् सत्यपि लक्षणात्वे श्रुतिसामर्थ्याद् रोहति शब्दः (१।४।२२) एवं कस्यचिदन्यस्य नाम 'कमल नयन' इति, अत्र आख्यातजत्वसिद्धान्तत्वात् 'कमल नयन' पदस्य व्युत्पत्तिदृष्ट्याऽपि प्रकृत पुरुषे तादृशी प्राप्त्या सत्यपि आख्यात- जत्वेऽपि रूढ़ि शब्दो गण्यते।

(३) वैयाकरणानां विदितं स्यात्-यद्—'दहावर्ष्य' स्वच्छन्दतां ब 'बहुल' इति शिवसूत्रे बहुवा शब्दान् स्वच्छन्दतया व्युत्पाद्य रूढ़ा अव्युत्पन्ना गण-

शब्दाः क्रियाशब्दा इति शब्दत्रयी स्वीकृता। भाष्यकृतापि च तत्र स्वस्वसम्मतिः पिशुनिता। परं तस्य भाष्य कृतश्चैव नैव आशयो शब्दाः अर्थात् रूढ़ि शब्दा लोके संसारे सर्वेषामेति, प्रत्युत यदृच्छा शब्दा अपि व्याकरणानुशिष्टाः प्रयोज्याः स्युरेक शब्दे यदि च ते व्याकृतिशिष्टाः तर्हि गुणक्रिया जाति शब्देष्वन्तर्गतत्वात् पृथ नार्हन्ति। परं गुणशब्दे क्रियाशब्दे वा मतेऽपि यत्र स गुणः क्रिया वा यथा मृतक नाम्नि जने मृतिक्रिया न दृश्येत सगुणशब्दोऽपि क्रियाश सन् यदृच्छाभिधो रूढ़ि नामा वा भवति। यथा च कस्यचिन्नाम 'तुलसीर यदि सज्जनः तुलस्या तुलस्या चारमते; तुलसी रमयति, वा तदातु क्रियाशब्दो वापि यदृच्छा शब्द एव। अतएव 'काव्य प्रकाशे' भट्टमम्मटे महनिरूपणे 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिरिति महाभाष्यकारः' इति 'न सन्ति शब्दाश्चतुर्थाः' इति वार्तिककाराभिसंहितं भाष्योक्तमनुसन्दधतापि अन्यथा भट्टमम्मटो बालिशो नासीद् यत्-तत् सिद्धान्तविरुद्धमलेखिष्यत च तत्त्वमस्माभिर्निर्दिष्ट चरम्।

अथ च भाष्ये "सन्ति यदृच्छाशब्दाः—इति कृत्वा प्रयोजन मुक्तं परिहारः। समाने चार्थे शास्त्रान्वितोऽशास्त्रान्वितस्य व्यावर्तको भवति। 'देवदत्त' शब्दो 'देवदिण्ण' शब्दं व्यावर्तयति—न गाव्यादीन्" इति "पक्षान्तरैरपि परिहारा भवन्ति" इति शिथिलोत्तरदर्शनाद्रूढ़िशब्दानां सिध्यति। तेन सिद्धं यद्-यस्याख्यातजस्यापि शब्दस्यार्थस्तच्छब्दवाच्ये न प्र दसौ रूढ़ि शब्दः। (महाभाष्ये १।१।१।) "वेदेऽपि याज्ञिकाः कुर्वन्ति—स्फ्यो यूपश्चषाल :—इति, तत्रभवतामुपचारादन्येऽपि जानन्ति संज्ञा" इति। एतदादिना वेदे संज्ञा शब्दा रूढ़ि शब्दाः सिद्धाः।

यत्तु वेदसम्मेलन (३०।१०।४३) भाषणे आर्यसमाजिना ब्रह्मदत्ता सुना वेदे यौगिकतामात्रं पुष्णता श्रीयास्कस्य तत्र साक्ष्यं दत्तं यत् "यास्क यौगि का परम पोषक है, यास्क के समस्त निर्वचन इसी के प्रमाण हैं। 'अयमपि शिरः एतस्मादेव' इत्यादि वचनों का क्या अभिप्राय है" इति च तत्रोक्तं व्यर्थम्। यदि यास्कानुसारं वेद मात्रे 'शिरः' शब्द आदित्यवाचकोऽभविष्य शिरोवाचकः, तदातु श्रीब्रह्मदत्तकथनं कथञ्चिद्युक्तमासीत् परं नैवमस्ति। इन्द्रः अभिलॅलाटम् (अथ० ६।१२ (७) १) इत्यादौ बहुत्र शिरःशब्दस्यार्थो लो 'शिर' इत्येवास्ति। प्रत्युत यास्केनापि लोकप्रसिद्धशिरःशब्दे स एव धातु स्वी

य आदित्यार्थके शिरःशब्दे। तेन तन्मते लोके वेदे च यौगिकता योगरूढ़ता वा अस्ति ; वेदे एव यौगिताया एकमात्रं नियमोनास्ति तन्मते। ततो नानेन वादिनः कापि इष्टसिद्धिः, प्रत्युत तदीयाऽनिष्टापत्तिरेव, यतो हि लोक रूढ़ा अपि ते ते शब्दा वेदेऽपि लोकरूढ़ार्थे वर्तन्ते। ततोऽस्मत् पक्षसिद्धिर्जातैव।

(४) वादिनां श्रीपाणिनिरपि माननीयः। स औनादिकशब्दान् प्रकृति-प्रत्यय रहितान् अव्युत्पन्नान् मन्यते। अतएव तु "अतः कृकमि कंस" (८-३-४६) इति सूत्रे कमुँ धातूपादानेनैव 'कृ' इत्यनेन 'कारः' इति प्रत्ययान्तस्यैव 'कंस' शब्द-स्यापि ग्रहणसम्भवे स वैयाकरणानां प्रसिद्धरात्रुभूलाद्गौरवादपि अभीत्वा तं 'कंस' शब्दं प्रयुंक्ते; तत्र केवल मेतदेव कारणं यत् स संस्कृतसाहित्ये कतिचिद् औणादिक-शब्दान् ये वेदेऽपि सुलभाः—रूढ़ान् मन्यते। एवं पाणिनिः कृत्तद्धितवर्जितानाम-व्युत्पन्नानामपि शब्दानाम्—अर्थवदधातु (१।२।४५) इति प्रातिपदिकत्वविधाय तेषामग्रे विभक्तिप्रयोगमनुशास्ति। तेन पाणिनिमतेऽपि तादृशरूढ़शब्दानां सत्ता सिद्धा। अतएव दयानन्दस्वामिना नामिकस्य' द्वितीय पृष्ठे लिखितम् 'पाणिनि आदि भी रूढ़ि मानते हैं'।

यदि एवं पाणिनेश्च अष्टाध्यायी वादिभिर्वेदाङ्ग मन्यते तद्व्याख्या च 'वेदाङ्ग प्रकाशो' मन्मन्यते, तर्हि वेदेऽपि पाणिनिनयेन रूढ़शब्दानां सत्ता सिद्धा। अतएव यास्केन 'न सर्वाणि आख्यातजानि नामानि' इति पक्षकृते गार्ग्यं नाम निर्दिश्य ततो "वैयाकरणानां चैके" (नि० १।१२।३) इति स्वप्राग्भवस्य पाणि-नेरपि संकेतः कृतः।

अतएव भाष्यकृदपि 'आयनेयी (७।१।२) इति सूत्रे 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि' इति ब्रूते। एवमेव 'आदेश-प्रत्यययोः (८।३।५६) इति सूत्रेऽपि च स औणादिकशब्देषु प्रकृतिप्रत्ययभाग व्युत्पादनमस्ति नास्ति च, इति पक्षद्वयं प्रदर्शयामास। तेन वेदेऽपि यो रूढ़योगरूढ़वा सिद्धा। किञ्च—यस्य ते अर्थगता धर्मास्तच्छब्द वाच्येऽपि प्राप्नुयुः अन्यत्रापि च अविव्याप्नुयुः, तत्र एकस्मिन्नेव नियमने योगरूढ़िता भवति। रूढ़िशब्दसिद्धावपि यथा स यास्कसिद्धान्तो न विहन्यते, तथा योगरूढ़ित्व स्वीकारेऽपि उक्त सिद्धान्ते क्षतिर्नापतति ; 'पङ्कजपदं' यौगिकत्वे कीटकमलादिबहुवाचकमपि कमले नियमितम्। अतएवास्य शब्दस्य आख्यातजत्वेऽपि योगरूढ़िता जाता। एतदर्थं श्रीयास्केनापि 'परिव्राजको भूमिजः (नि० १।१४।२) एवं 'विल्वादः' लम्बचूडकः' (१।१४।७) एवदादयो योगरूढ़ाः शब्दाः स्वयमुदाहृताः, यत्र तदीयमिदमभिसंहितं यत्-केषाञ्चित् सन्यासि प्रभृतीनां

परिव्रजनक्रियया तच्छब्दवाच्यता भवति। एकेषाञ्च भिन्नानां परिव्रजन
त्वेऽपि तन्नामोपलम्भो न भवति, इयमेव योगरूढ़िता नाम। भाविबिल्वाद
लम्बचूडकत्वे च प्राक् प्रयुक्तमेतद्वा दिर्क नाम आख्यातजत्वेऽपि तदानीमाख
नुलम्भा द्रूढ़िपदवीमर्हति।

वेदे यौगिकशब्दास्तु वादिनामार्यसमाजिनामपि सम्मता एव। तत्र
मीमांसया रूढ़ि शब्दा योगरूढ़िशब्दाश्चापि सिद्धाः। स्वा० दयानन्देन 'ना
द्वितीयपृष्ठे रूढ़िशब्दविषये प्रोक्तम् "रूढ़ि उसको कहते हैं कि जिसमें मह
का अर्थ न घटता हो, किन्तु वह संज्ञा बोधक हो जैसे—खट्वा, शाला
इत्यादि।" तत्किं वेदे एतदादिकाः शब्दा न सन्ति? यदि सन्ति; तर्हि
रूढ़ि शब्दाः सिद्धाः। यथा च वेदे 'शाला' शब्दः—"शालाया विश्वव
(अ. ६।३।१) अत्र स्वामी दयानन्दीय 'संस्कारविधेः' २१६ पृष्ठं द्रष्टव्यम्। एव
शब्दा द्रष्टव्याः।

यौगिकरूढ़ा अपि शब्दा वेदे वर्तन्ते; प्रत्युत तदुदाहरणं वेदस्थैव
'उद्भिद्' पदम्। 'उद्भिदा यजेत' इति श्रुतिर्मीमांसा दर्शने (१।४।१-२) सू
चद्धृता। तद् 'उद्भिद्' पदं यौगिकत्वे वृक्षं, रूढ़ित्वे च यज्ञविशेषं व्यनक्ति।
वेदे रूढ़ित्वं नाभविष्यत्; तर्हि 'अपि वा नामधेयं स्यात्' (१।४।२) अत्र
कृता 'उद्भिदादीनां कर्मनाम-धेयता न प्रत्याख्यास्यत। तेन वेदेपि रूढ़—योग
यौगिक—यौगिकरूढ़ेति चतुर्विध शब्दानां सत्ता सिद्धा। ततो वेदेपि यौगिक
सिद्धान्तयन्त आर्यसमाजिनः प्रत्युक्ताः।

(५) वेदे 'मर्य इव योषाम् (अर्थ-१४।२।३७) अत्र मन्त्रे 'मर्य, श
मर्त्ये रूढ़ः, तर्हि 'स मर्यः' (१।७७।३) इति 'ऋग्वेद' (शा० सं०) स्थ मन्त्रे
विशेषणत्वे 'मारक' इत्यर्थवान् यौगिको वर्तते। एवं 'यत्रा नरो दे
(अ० २०।१०७।१५) अत्र यदि 'नृ' शब्दो मनुष्ये रूढः, तर्हि 'दिवो नरः
१।६४।४) इति मरुद् देवता के मन्त्रे 'नेतारः' इत्यर्थकत्वेन यौगिकः। एवं 'नृणां
(ऋ. ६।३३।३) इतीन्द्रदेवताके मन्त्रे 'नेतॄणां मध्येऽतिशयेन नेतः।" इति स
दिभिर्यौगिकत्वेन अर्थः कृतः। 'पुरुषः पशुः (अ० ८।२।२५) अत्र यदि पशु
गजादि-पशौ रूढ़ः, तर्हि "विद्वान् अनष्टपशुः" (ऋ १०।१७।३) इति पूषदे
मन्त्रे 'पशु' 'शब्दो ज्ञाने यौगिकः, अनष्टपशुः—अप्रतिहतज्ञानइत्यर्थः। 'माऽ
महिषेव अवपानात्' (ऋ० १०।१०६।२) अत्र 'महिष' शब्दो यदि पशु
रूढ़स्तर्हि 'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत' (ऋ ८।८।४) अत्र महद्यौ स यौ

'महान्तो माध्यमिक देवगणाः) नि० ७।२६।१) इत्थं 'तस्मैपावक !' (ऋ० १।१२-६) अत्र यदि 'पावक' शब्दोऽग्नौ रूढ़ तर्हि 'समुद्रार्था याः शुचयः पावकाः, ता आपो देवीरिह मामवन्तु (ऋ० ७।४६।२) अत्र अन्नेवतात्वाद् यौगिकः। यदि 'वह्नि' शब्दो वेदे 'वह्निं यशसं' (ऋ. १।६०।१) इत्यादि मन्त्रेषु अग्न्यर्थे रूढ़ः, तर्हि 'यदि मातरो जनयन्त वह्निम्' (ऋ. ३ ३१।२) इत्यादिषु मन्त्रेषु पुत्रार्थे यौगिकः।

'पुरन्धिर्योषा' (मनु० २२।२२) इत्यादौ यदि 'योषा' शब्दः स्त्र्यर्थे रूढ़ः, तर्हि 'शुद्धाः पूता योषितोः यज्ञिया इमाआपः' (अ. ११।१।१७) इत्यादौ योषिच्छब्दोऽपाम (जलानां) अर्थे 'यूष्यन्ते—सेव्यन्ते' इति यौगिकः। यदि 'देवान्-मनुष्यान् असुरान्' (अ. ८।६।२४) अत्र 'असुर' शब्दो देवविरोधिदैत्यार्थे रूढ़ः, तर्हि ये च देवा रक्षा नून पाहि असुर ! 'त्वमस्मान्' (ऋ. १।१७४।१) अत्र इन्द्रदेव कृते 'बलवान्' इति यौगिकरूपे प्रयुक्तः। एवं वेदे यौगिका रूढ़ा, योगरूढ़ा, यौगिकरूढ़ाश्च शब्दाः सिद्धाः।

ये वेदे यौगिकताहठमात्रे विराजमाना अर्वाञ्च आर्य-समाजिनः ते स्वनेतुः स्वामीदयानन्दस्य वचनं शृण्वन्तु। तेन निज 'नामिक' पुस्तकस्य द्वितीय पृष्ठे प्रोक्तम्—"यास्क मुनि आदि निरुक्त कार और व्याकरणों में सब शाकटायन मुनि सब शब्दों को धातु से निष्पन्न अर्थात् यौगिक और योगरूढ़ि ही मानते हैं, और पाणिनि आदि रूढ़ि भी मानते हैं, परन्तु सब ऋषि मुनि वैदिक शब्दों को यौगिक और योगरूढ़ि तथा लौकिक शब्दों को रूढ़ि भी मानते हैं।"

अनुपद स्वामिना 'निघण्टु वैदिक कोषस्य भूमिकायां लिखितम्—"यह सब पद वेद में यौगिक और योगरूढ़ि आये हैं केवल रूढ़ि नहीं" इयन्तः स्पष्ट शब्दाः अत्र तेन वेदे योगरूढ़ा अपिशब्दाः स्वीकृताः; यान् अद्यतना आर्यसमाजिनो न मन्यन्ते, येन सनातनधर्मस्य पक्षस्य सम्यक् पुष्टिर्जायते। वेदे केवलं रूढ़ि शब्दान् वयमपि सनातनधर्माणो न मन्महे, परं रूढ़ानपि योगरूढ़ानपि, यौगिकानपि यौगिकरूढ़ानपि। एतत्पुस्तकस्य भूमिकायां स्वामी दयानन्देन लिखितम्—"वह वेद 'पर्वत' शब्दस्यार्थो 'मेघ' इत्यस्ति यौगिकत्वे, परं पौराणिकास्तु 'पहाड़' ही न रूढ़ार्थं गृह्णन्तिइति" परमनुनैव स्वामिना यत्र वेदे पर्वत शब्दस्य 'मेघ' इत्यर्थं कृत, केवल 'यजुः १७।१, यजुः १८।१३, इत्यादि स्थले पर्वत शब्दस्य 'पहाड़' इति रूढ़ार्थोऽपि स्वभाष्ये कृतः। एवं तत्रैव तेन प्रोक्तम्—वह वेद 'अहि' शब्दस्य मेघार्थः; परं पौराणिकाः सर्पार्थं गृह्णन्ति; परं वयं ब्रूमो यह वेद उभयत्र अर्थो, 'यस्मात् ३८ बभूव:' (अ. १०।४।६) अत्र सर्पार्थः स्पष्ट एव। एवं निघण्टु-वह-वेद यदि यौगिक

ब्दाः सन्ति; तर्हि तत्र रूढ शब्दा अपि विद्यन्ते। अन्यथा वेदे ।
ब्दोऽपि रूढोनमन्तव्यः, किन्तु ज्ञान पर्यायतया सर्वत्र यौगिको मन्तव्यः।
६।१।२०३) पठित आद्युदात्तो वेदशब्दो रूढो मन्यते। अञ्छादिगणे (
ठितस्तु वेदशब्दो यौगिको मन्यते।

(६) तेन सिद्धं यद्—ये आर्यसमाजिनो वेदे पुराणानुकूल्यं
नसम्प्रदाय-सिद्धान्तभ्रंशं वीक्ष्य तत्र यौगिकतापादने स्वेदं प्रवाहयन्ति,
साहित्यस्य चिरन्तसपत्नभूता ज्ञेयाः। आर्यसमाजिना श्रीपाददामोदरसाव
नपि 'महाभारत की समालोचना, नामकपुस्तकस्य द्वितीय भागे ११७ पृ
हमारा भी पक्ष है कि—इन शब्दों का यौगिक अर्थ भी है; परन्तु वह अर्थ
त्मिक तत्वज्ञान विषय का विचार करने के समय उपयोगी है। ऐतिहासिक
लिए वह अर्थ लेना योग्य भी नहीं है। निरुक्त कार आध्यात्मिक अर्थ प
यौगिक अर्थ के द्वारा बताते हुए ऐतिहासिक तात्पर्य भी साथ-साथ बताते हैं

ये खलु आर्यसमाजिनः स्वस्वार्थसिद्ध्यर्थं वेदे यौगिकतामात्र
रूढितयाऽर्थकर्तृंश्च सनातनधर्मिण आक्षिपन्ति; त एव आर्यसमाजिनः
भ्रंशो समापतिते स्वकीयं यौगिकतासिद्धान्तं विस्मृत्य वेदे रूढ्यापि अर्थं कर्तुं
तथा च ते 'हस्तग्राभस्य दिधिषोः (ऋ १०।१८।८) 'पुनर्भुवा परः पतिः (अ,
इत्यादौ 'दिधिषोः' इत्यादेः 'गर्भस्य निधातुः' इति यौगिकार्थं त्यक्त्वा 'पुनर्भू
रूढा द्विस्तस्या दिधिषूः पतिः' इत्याद्यमरकोषमवलम्ब्य रूढ्या अर्थं कुर्वन्ति।

दश्यतां श्रीतुलसीरामस्वामिनो 'भास्करप्रकाशस्य' चतुर्थे समुल्लासे
प्रकरणम्। परं वस्तुतः एषां स्थिरः सिद्धान्तः कोपि नास्ति। वेदात् सना
दूषयितुममी स्वसिद्धान्तानपि विस्मरन्ति।

अवशिष्ट एव तिष्ठति प्रश्नो वेदे यौगिकतामात्रवादिनां वादिनां यद्
यौगिकत्वार्थो वेदे न क्रियेत; तर्हि वसिष्ठादि वर्णनपराणि वेदस्थलानि तत्तद्वि
पाख्यानानि मन्तव्यानि स्युरिति; परमेतदपि मन्दम्। किं भवन्तः परमात
ज्ञानमीदृशं शिथिलं विभावयन्ति यत् स भविष्यद् दृष्ट्वा वेदे वसिष्ठादीन् अ
समर्थो न स्यात्? अत्र १।३।२८ 'वेदान्तदर्शन' सूत्रस्य शाङ्करभाष्यं समर्थ
"चिकीर्षितमर्थमनुतिष्ठन् तस्य वाचकं शब्दं पूर्वं स्मृत्वा पश्चात्तमर्थमनुतिष्ठतीति स
नः प्रत्यक्षमेतत्। तथा प्रजापतेरपि स्रष्टुः सृष्टेः पूर्वं वैदिकाः शब्दा म
प्रादुर्बभूवुः; पश्चात्तदनुगतान् अर्थान् ससर्जेति गम्यते। तथा च श्रुतिः
भूरिति व्याहरन् स भूमिमसृजत (ते ब्रा, २।२।४।२) इत्येवमादिका भूरादि श
[illegible] मनसि च दुर्नन्तौ मूर्तादिकान् सृष्टान् दर्शयति"।

(७) अथर्व वेदे—सुहवमग्ने ! कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शम् आर्द्रा पुनर्वसू सूनृता चारु भानुराश्लेषा अयनं मघा मे' (१९।७।२) पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तः चित्राशिवा स्वाति सुखो मे अस्तु। राधे विशाखे सुहवाऽनुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् (१९।७।३) अन्नं पूर्वा रासतामे आषाढ़ा ऊर्जं देवी उत्तरा आवहन्तु। अभिजिद् मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा (धनिष्ठा) कुर्वतां सुपुष्टिम् (१९।७।४) आमे महत् शतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा (पूर्वाभाद्रपदाउत्तराभाद्रपदा) सुशर्म आरेवती चाश्वयुजौ (अश्विनौ) भगं मे रयिं भरण्य आवहन्तु (अ. १९।७।५) इति मंत्रेषु क्रमशोऽष्टाविंशतिनक्षत्राणां कथनम्, तेभ्यः फलित ज्योतिषवत् कल्याणादि प्रार्थना च। 'शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा शं नो मृत्युर्धूमकेतुः (अ. १९।९।१०) अत्र चन्द्रसूर्यराहुकेत्वादिग्रहाणां स्पष्टया वर्णनम्, तेभ्यः कल्याणप्रार्थना च।

'सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयद् दिवं च पृथिवींचान्तरिक्षमथो स्वः' (ऋ० १०।१९०।३) अस्यार्थः स्वामी दयानन्देन 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकायाः' २८ पृष्ठे इत्थं कृतः 'सूर्यचन्द्र ग्रहणमुपलक्षणार्थम्। यथा पूर्व कल्पे सूर्यचन्द्रादि रचनं तस्य ज्ञान मध्ये आसीत्, तथैव तेन अस्मिन् कल्पेऽपि रचनं कृतं' अत्र स्वामिना [illegible] अर्थः कृतः।

श्रीस्वामि-शंकराचार्येणापि अयं मन्त्र इत्थमर्थापित —यथा पूर्वस्मिन् - कल्पे सूर्याचन्द्रमसः प्रभृति जगत्क्लृप्तम्, तथाऽस्मिन्नपि कल्पे परमेश्वरोऽकल्पयद् इत्यर्थः (वेदान्तदर्शने १।३।३०) 'नासदासीन्, नो सदासीत् तदानीं' (ऋ० १०।१२९।१) 'तम आसीत् तमसा (१०।१२९।३) इति भूतकालिकं वर्णनं [illegible]। [illegible] (ऋ० १।१६४।४) इति मन्त्र भाष्ये श्री दयानन्द स्वामिना लेख्यते—हे अनन्त [illegible] जगदीश्वर ! देवेषु पृथ्व्यादि जातेषु अभिव्याप्त्यादि [illegible] [illegible] अत्र स्वामिना वेदे एव [illegible] किन्तु, अङ्गिरोवत् देवाः वर्णनं कृतम्।

इदानीं पूर्वमन्त्रान् स्मृत्वा इदं वाच्यं यत् किं (ऋ० १ [illegible]) [illegible] सूर्यचन्द्रादिरचनातः [illegible] [illegible] (ऋ० [illegible]) [illegible]

क्रियमाणपदाध्याहारे च परस्परं विवादो जायेत। लवपुरीय 'हिन्दी पाठकानां विदितं भवेत्—यत् तस्मिन् पत्रे '१३।३।३५ तिथौ, श्रीयुत् चमू रत्नार्यस्य च यास्कयुग विषये विवादः प्राचलत्। तत्र श्रीचमूपतिः अ लभतेस्म यत्—भवान् वेदस्य अतियौगिकार्थं करोति श्री प्रियरत्न मुपालभतेस्म।

कथनस्येदं पर्यवसितं यद्—यौगिकमात्रतायामवलम्बितायां विवि समुपतिष्ठेरन्, तदा तु वेदे 'भर्ता' इत्यस्य भ्राता इति, भ्राता इत्यस्य 'भर्त इत्यस्यार्थः पतिरिति, 'पति' रित्यस्य 'पिता' इति। जाया, इत्यस्यार्थो 'भगिनी' त्यस्य पत्नी'ति इच्छानुसारमर्थो क्रियमाणे कापि व्यवस्था तदा च महान् उपप्लव उपस्थितः स्यात् अतएवाहं सनातनधर्म विदुषः प्रा अवश्यं सतर्कतामवलम्बन्तो भवन्तः! अन्यथा वेदा न स्थास्यन्ति, अर्वाचीन मतानुयायिनोऽनुचराः इव स्युः।

(८) इदं यौगिकतामात्रं कथं स्वसिद्धान्तः कृतो वादिभिः एतद् रह पाठकैः। तदिदं यद् यावद् यौगिकता मात्रं नावलम्बेरन् वादिनः त स्वसिद्धान्तान् निष्कासितुं समर्था एव न भवितुं शक्ताः। अतएव ते स्वदृष्टिकोणे संस्थाप्य यौगिकता व्यपदेश्यां 'तोड़फोड़' प्रणालीमवलम्ब्य तं प्रयत्न निष्कासयन्ति परं यौगिकतामात्रेण हानिरियं भविष्यति यद्-येन वा मौद्गमता [illegible] वेदान् प्रसह्य स्वसिद्धान्तान् निष्कासयितुं प्र

अथ च अन्वाद्दानिर्भरेत् स्वयं वादिनाम, सा इयं यद् [illegible] कल्पन्तं, तत्र कारणं यद् वर्तमान काले प्रायः [illegible] सुविधास्ति। सुवि [illegible] यदि [illegible] सुविधा [illegible]; [illegible] सुविधा [illegible]। [illegible] सुविधा [illegible]; [illegible] यदि; तदा [illegible] स्यात्। [illegible] स्यात्। [illegible] आधुनिक [illegible] सुविधा [illegible]

६—एकस्य बकस्य सन्ततिं तन्निकटवल्मीकस्थकृष्णसर्पोभातिस्म। दुःखितेन बकेन सर्पनाशाय कर्कटेन उपायं पृष्टः, तेन जातिशत्रुरयमिति मत्वा आपाततस्तद्धितप्रदर्शक उपायो निर्दिष्टो यद्-नकुल-वल्मीकमन्विष्यताम। तस्मादारभ्य सर्पबिलपर्यन्तं मत्स्यमांसखण्डानि क्षेप्तव्यानि। तन्मार्गानुसारी नकुलः सर्पंव्यापादयिष्यति। तथैव जातम्। एवं तन्मांसक्रमेण गच्छन्नकुलः सर्पं तु व्यापाद यदेव परं बकमपि सस्त्रीकं भक्षितवान् एवं स्वामिना यः सनातनधर्मविनाशाय मार्गः प्रदर्शित आर्यसम्माजिनः प्रति यौगिकतामात्रार्थापादनस्य; तेनैव मार्गेण आर्यसमाजिनः श्रीदयानन्दस्याप्यर्थं निराकार्षुः। इमे आर्यसमाजिनश्च यान् सनातनधर्मविनाशकान् यौगिकवादीन् ततोऽप्यतिशय्य स्वीचक्रुः; तदा तत्परभाविन एव सत्साम्प्रदायिका एषामप्यर्थं ततोप्यतियौगिकान्-अर्थान् कृत्वा निराकर्तारः। अयमेवस्वपादयोः कठोरकुठारप्रहारो नाम इति न विचिन्तयन्त्येते अदूरदर्शिनो वादिनः।

इतश्च यौगिकतामात्रं स्वीकृते रूढ़ियोगरूढ़ताऽस्वीकारे च वेदे सर्वे विशेषणशब्दा एव स्युः; विशेष्यं तदा किमपि न तिष्ठेत्, रूढयोगरूढयोरेव शब्दयोर्विशेष्यताया अनिवार्यत्वात्। यौगिक शब्दानां तु गुणशब्दत्वाद् वा क्रिया शब्दत्वाद्वा सर्वदा विशेषणता आपद्येत्। परं नैवमिष्टमस्ति। वेदे विशेष्य शब्दा अपि सन्ति ततस्तेषां रूढ़िवायोगरूढ़िवापि च सिद्धा। यदि वादिनो वेदे रूढ़िशब्दान् नापि स्वीकुर्वन्तु, परं यदि योगरूढ़िशब्दास्तत्र स्वामिदयानन्द कथनानुसारं स्वीकुर्वन्तु तदापि सनातन धर्मस्य सिद्धिः। इति—अयमर्थं ज्ञेयम्।

स्वामी दयानन्देन 'संस्कारविधौ' वेदारम्भ संस्कारे ११२ पृष्ठे प्रोक्तम्—"यौगिक योगरूढ़ि और रूढ़ि तीन प्रकार के शब्दों के अर्थ यथावत् जानें" अस्य टिप्पण्यामनुना लिखितम् "यौगिक जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रखें जैसे पाचक याजकादि, योगरूढ़ि जैसे पङ्कजादि, रूढ़ि जैसे, धन, वन इत्यादि।" अत्र तेन रूढ़ि शब्दा धन वनादयोमताः। वस्तिमेतदादि शब्दा वेदे न समायान्ति ? समायान्त्येव। यथा च धनं न स्यन्द्रं (ऋ० १०।४२।५) 'वनेषु' (यजुः ४।३१) यदि समायान्ति तर्हि वेदे रूढ़ि शब्दा अपि सिद्धाः। योगरूढ़ा अपि स्वामिदयानन्देन मता वेदे-दृत्यस्मामिस्तद्वाक्यं निर्दिष्टपरम्।

स्वामिदयानन्देन स्वपारिभाषिके १३ पृष्ठे २२ परिभाषायामुक्तम्—उणादि प्रातिपदिक अव्युत्पन्न अर्थात् उनका सर्वत्र प्रकृति प्रत्यय वाचक आदि से यौगिक यथार्थ अर्थ नहीं ...

प्रातिपदिकानि वेदेऽपि दृश्यन्ते तथात्र रूढ्यादयो अपि सिद्धाः । तत्
यद् वेदे-रूढि-योगरूढि शब्दा न समायान्ति ?

यदि रूढि-योगरूढि शब्दा वेदे न भवेयुः तर्हि वेदस्य निघण्टु कोश
भवति ; यतोहि निघण्टौ रूढ्योगरूढाः पर्याया एव तु सन्ति संगृहीता

अपतनवादिनामतयोगिकता मात्रपक्षे तु तन्मतानुसारं तत्संदर्भमु
कथा कथमुपपद्येत ? यथा 'अमरकोशो लौकिक शब्द कोश संग्रहः ॥
वैदिक शब्द संग्रहः यदि तत्स्वरूपस्य तत्कार्ये निघण्टुने 'अमरकोषे ह
तथा निघण्टावपि साम्यम् । यदि निघण्टौ निर्वचना कारणात्—यौगि
रूढिर्वा ; तथा 'अमरकोषे' पि । दृश्यतां तदीया 'व्याख्यासुधा' च
व्याख्यान्तराणि च । लोकेऽपि च भाष्यकारादिभिः 'नसन्ति यदृच्छा
रूढि शब्दानां सत्ता निषिद्धा । अतएव श्रीभानुजी दीक्षितेनापि 'अ
व्यारम्भे लिखितम्—यद्यपि चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः' इति पक्षे संज्ञा श
त्तिर्नावश्यकी, तथापि शाकटायनाद्यभिमतत्रयोपक्षे व्युत्पत्तिः प्रदर्श्यते' ए
रूढिशब्दानामभावे साम्यमेव सिद्धम् । एवञ्च उभयत्र साम्ये सिद्धे-अ
कोषे रूढिमात्रतादोषापातः ।

(१०) अभिनन्दनग्रन्थस्य पाठकवृन्दम्—अभिनन्दनावसरे एव
प्रकरणं प्रचालितं मत्वा कदाचिद् उद्विग्नं भवेत् परमयमस्ति अत्यन्त
विषयः । वेदे सनातनधर्मस्य सत्ता अस्मिन्नेव विषये निर्णीते विद्यते ।
योगरूढि-शब्दसिद्धौ आर्यसमाजस्य स्वेच्छानुसारितारूपार्थ करणार्थं स
वेदेऽस्तित्वा भावसाधनार्थं च आर्यसमाजिभिः क्रियमाणा व्याजा निरस्ये
अत्र सनातनधर्मिविद्वांसोऽवधास्यन्ति ; वेदे च आग्रहमहिलान् तादृग्वि
चेष्टातो रोत्स्यन्ति । तदा तु वेदा स्वस्वच्छावस्थायां स्थास्यन्ति । त
पुराणयोरेकवाक्यतापि सम्भवेत् । अन्यथा तु वेद पुराणादीनां विरू
असम्भवो नास्ति प्रत्युत तत्संम्भव आशास्यते ।

एवद् एतदुदाहरणेन भवन्तो ज्ञास्यन्ति यत् सत्यार्थप्रकाशः दयान
पकारिणी सभा, आर्यसमाजः, गुरुकुल, एतदादयोरूढिशब्दा यौगिकत्वेन
येरन् यदि, तदा दयानन्दादयः केऽप्यासन्, इति स्वयमसिद्धं भवेत्, एषा
तैव विलीयेत । एवैव नीतिराश्रिता आर्यसमाजेन वेदात् पौराणिकता
वा विलोपयितुं, वेदस्थसनातनधर्मसिद्धान्तांश्च वेदाऽसम्बद्धान् कर्तुम् ।
साफल्यमपि अभजत् सोऽनभिज्ञजनतायाम् । अत एवाहं प्रेरयामि
व्याकरणाचार्य्यैः शास्त्रिभिश्च वेदे प्रवेशं कृत्वा विषयेऽत्र सर्वतः प्राग्
एवं कृते सति वेदानां तत्स्थसनातनधर्मस्य प्रचारोऽपि च सम्यक् स्यात् ।

श्रौत-स्मार्त-पौराण-देवता-विमर्शः

ले०—महायाज्ञिक-वैदिकसार्वभौम-पुराणवाचस्पति

पं० श्री भगवत् प्रसादजी मिश्र महोदयाः,

प्रोफेसर

गवर्नमेण्ट संस्कृतकालेज, बनारस

आर्या हि भारतगौरवमूलभूते लोककल्याणसाधने वैदिके शब्दराशौ परं श्रद्दधानाः—

"यः समिधा य आहुती यो देवेन ददाश मर्त्यो अग्नये। यो नमसा स्वध्वरः तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः। न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत्" इति, (ऋ. ८।१९।५-६)

"मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥"

(ऋ. १०।११७।६) (तै. ब्रा. २।८।८।३) (८।१।३ इति च)

तदीयमनुशासनं शिरसा हृदयेन च मन्यमाना यथायथं यज्ञादिकर्मानुतिष्ठन्ति। यद्यपि पूर्वकालापेक्षया सम्प्रति सर्वस्यापि शास्त्रीयकर्मणो विशेषतश्च प्रत्यक्षश्रुतिसमुपदिष्टस्य श्रौतकर्मणोऽनुष्ठानं न सन्तोषावहं भवतीत्यस्माकं कालशिक्षोभयकृतः प्रमादपरिचय एव। तथापि बहुभिरनार्यैर्वेदवैदिकविद्वेषिभिर्वा बहुवारं कर्ममार्गस्यास्योन्मूलनाय कृतेऽपि बहुविधे प्रयत्ने सारभूयिष्ठत्वादस्य मन्थतः सम्प्रदायतश्चाक्षुण्ण एवायं मार्गो विराजमान आस्ते। तत्र व्यक्तिशः कर्मणां भेदानन्त्येऽपि प्राधान्येन श्रौतस्मार्तपौराणिकभेदभिन्नतया त्रिविधान्येव कर्माणि तत्र यानि हि प्रत्यक्षश्रुतिसमुपदिष्टानि कर्माणि श्रौतानि, तेभ्यः स्मार्तेषु देवता-द्रव्यर्त्विगादिविषयकं किञ्चिदिव वैलक्षण्यं ततोऽधिकं पौराणिकेषु कर्मसूपलभ्यते। तदत्र देवतामुपलक्ष्य किञ्चित् प्रस्तूयते। यथाहि—

(१) वैदिकेषु केवल नैरुक्त लोकत्रयाभेदेन अग्निरिन्द्रः सूर्य-इति देवतात्रयं मन्यते। पौराणिकाश्च शिव-विष्णु-देवी-सूर्य-विनायकेति प्राधान्येन पञ्चानां देवतानामुपासनमुपादिशन्ति।

एकस्या एव देवताया बहूनि नामानि गुणतः कर्मतश्च सम्भवन्तीत्युभये।

(२) श्रौते कर्मणां बाहुल्येऽपि देवतानां बहुत्वं पौराणिक देवतानामिव न
यथा हि श्रौतेऽनुपलभ्यमानानामपि वितथगृहक्षत-दौवारिक-भृङ्गराज-मृगलो
इन्द्र चौरादीनां बह्वीनां देवतानां पौराणिककर्मसु पूजनादिकमभ्यनुज्ञायते।

(३) वेदे एकस्या एव देवतायाः शान्तमशान्तं चेति नाम द्वैविध्यं देशभे
भिन्नानि नामानि श्रूयन्ते। यथा—"अग्निर्वै देवस्तस्यैतानि नामानि सर्व इति
प्राच्या आचक्षते, भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पतिरग्निरिति तान्यस्याशान्त
स्येतराणि नामानि अग्निरिति शान्ततमम्॥" (श० ब्रा० १।७।३।८)

(४) श्रौतेषु कर्मसु बहुत्र एकस्मिन्नेव हविषि एकस्यामाहुत्यां भिन्नयोर्देव
समुच्चित्य देवतात्वमवगम्यते। यथा इन्द्राग्नी, मित्रावरुणौ, अग्नीमारुतौ, इत्य
स्मार्तेषु पौराणेषु च नैवं प्रायो देवताद्वन्द्वेन समुच्चित्य हविः प्रदाने समवलोक्यते

(५) श्रौते स्मार्ते च कर्मणि मिथुनयोः स्त्रीपुंदेवतयोर्द्वन्द्वश्रुत्या ऐकरूप्येण
देवतात्वं नोपलभ्यते। पौराणे च कर्मणि लक्ष्मीनारायण सीतारामार्ध नारीश्व
याख्याभिस्तथाविधत्वंसुस्पष्टमुपलभ्यते।

(६) श्रौते कर्मणि मरुतः सान्तपनाः, इन्द्रो विमृधः, अग्निरनीकवान् इ
देवतानां सविशेषणं नाम हविर्याज्यास्वनुश्रूयते। स्मार्ते पौराणे च कर्मणि प्र
नैवं सविशेषितायाः देवताया नाम हविः प्रदाने समाद्रियते।

(७) श्रुतिषु देवतानामुपासने आवाहनं स्तुतिः हविःप्रदानमिति रूपत्रय
दृश्यते। पुराणेषु च तद् जपहोमार्चनाभिषेकदानात्मक (ब्राह्मणभोजनात्मक) ं
ञ्चधाविभक्तमपि अवान्तरभेदेन बहुविभिद्यते।

(८) तत्र श्रौते स्मार्ते च कर्मणि देवतानां हविर्भाक्त्व-स्तुतिभाक्त्वोभ
ाक्त्व रूपेणास्ति भेदत्रैविध्यम्। पौराणिके तु हविस्तुत्युभयभाक्त्वरूपमेक विधम
ोपलक्ष्यते। न हि पौराणिकी काचनेदृशी देवता दृश्यते या केवलस्तुतिवचनेन
ेवता· तत्र वान्यत्र वा हविर्भाक्त्वेन न श्रुता स्यात्। तस्या हि किमप्यभिधानं
दृगुपलब्धुं शक्यते, यद्धि स्तुतिवचने प्रयुक्तमपि होमहविर्भाक्त्वेन न विहितं स्या
था शालग्रामः, नर्मदेश्वरः, इत्यादि।

(९) स्मार्ते कर्मणि ब्रह्मणे हविः प्रदीयते। पौराणेषु कर्मसु सर्वतोभद्रादिमण्डले
ह्माधिदेवताप्रत्यधिदेवतासु दिक्पालेषु च ब्रह्मणो देवत्वेन समर्चनं, सृष्टिस्थिति-
हारकर्त्रीषु तिसृषु देवतासु सृष्ट्यधिकारीत्वेन च सङ्कीर्तनं भवदपि स्वातन्त्र्येण शिव
ष्ण्वादिवदर्चनं नारभ्यते। श्रौते च सृष्टिकर्तुः प्रजापतित्वेन सङ्कीर्तनाद् ब्रह्म
ेदेन देवतात्वमत्यल्पमेव लभ्यते।

(१०) याज्ञिकाः पौराणिकाश्च देवतानां विग्रहवत्त्वं बहुत्वं चाभिप्रयन्ति न तु मीमांसकवन्मन्त्रात्मकत्वम् ॥

(११) श्रौते स्मार्ते च कर्मणि देवतायाः कदाचिद् विग्रहवत्त्वाभ्युपगमेऽपि तद्विग्रहस्य शिलाद्युपादानेन निर्माणविधानाभावात् तस्यप्रतिष्ठादि संस्कारस्य न्यासादि-व्यापारस्य च उपयोग एव नास्ति । पौराणे तु कर्मणि देवतायाः स्वानुरूपं विग्रहं विरचय्य तत्र सात्मकत्वविधानार्थं प्राणप्रतिष्ठार्थं च तत्तदंगेषु अभीष्टायादेवताया अनुरूपकष्ठान्यासो विधीयमानो दृश्यते ।

(१२) श्रौतस्मार्तयोर्देवतानामग्निमुखत्वं ब्राह्मणमुखत्वं च दृश्यते । पौराणिकानां प्रतिमात्मकाधिष्ठानमुखत्वमेकं विशिष्यते । तदधिष्ठानमुपादानादिभेदेन शिला-वर्णादिमयं बहुविधं दृश्यते । तथा च—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।
(श्रीमद्भागवतम्)

प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु ।
अपि वाक्षत पुञ्जेषु,
(छन्दोगपरिशिष्टम्)

स्वर्णे वा पटलेख्या गन्धैर्मण्डलकेषु वा ।
(याज्ञवल्क्यस्मृतौ)

एतेष्वन्यतमे कल्पित आश्रये देवताधिया तन्नाम्ना अर्चनाभिषेकादि विधीयते, कल्पितेष्वाश्रयेषु प्रतिष्ठापनपूर्वकमावाहनमावश्यकं भवति । शालग्राम-नर्मदेश्वरादि पुराणोक्त स्वयंसिद्धदेवताश्रयेषु आवाहनप्रतिष्ठादिकमन्तरापि पूजन-मभ्यनुज्ञायते ।

(१३) देवतानां सर्वासामपि त्रिगुणातीत चिदात्मकत्वेन ऐक्येऽपि प्रयोजनानुरोधेन रूपभेदात्, गुणात्मकरूपभेदं परिग्रहवशेन व्यवहारभूमौ बहुरूपत्वं दृश्यते ।

महाभाग्याद् देवताया ऐश्वर्यात् सर्वविधफलदानसामर्थ्ये सत्यपि उपासकानां कामनानुसारं तत्तत्फलप्राप्त्यर्थं शास्त्रविधानानुसारेण तत्तद्देवताया एव उपासनाया औचित्यं प्रतीयते—व्यवहारतः । देवताविशेषस्य शक्तिविशेषवत्त्वं नियतफलदान सामर्थ्यं च अनेनैव हेतुना पुराणेषु विशेषतः समुद्घोष्यते ।

तदेवमत्र संक्षिप्य निरूपिता सेयं देवता ।

यथायथं शास्त्रविधिना समुपासिता सद्बुद्धिप्रदानेन मनुष्यजातिं विशेषेण रक्षति, इत्यौपनिषदो वेदोपदेशोऽस्माभिरधुनापि सोत्साहं पालनीयः श्रेयस इति ।

॥ शिवम् ॥

"सुख-स्वरूप-विवेकः"

ले०—श्रीमान् पं० राधाकृष्ण जी शर्मा
मण्डावा (जयपुरम्)

सर्वत्रेह जगति प्राणिनः सुखलाभाय प्रयतमाना दृश्यन्ते, अतः सुखमेव इष्टं फलं ज्ञायते। अन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वात्। स्रक् चन्दनवनितावनिता... सुखेच्छाधीना, सुखेच्छा तु न परायत्ता, अतस्तदेव इष्टं मुख्यं फलमिति ...। अत्र विचार्यते—सुखाभिलाषः प्रत्येकं जीवानां स्वाभाविकः। मनुष्य... आधिक्यो विकासो ज्ञानस्य, अतोऽयं मनुजः प्रतिक्षणं तदीयाभिलाषस्य बोधति ...स्ते। "पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा" इति श्रुतेः। पूर्वमभिलष्यमाणामिदानीं वर्तमानामवस्थां कियत्कालानुभूतां क्षुद्रां मन्यमानः तदुपरितनां दशामभि... तत्र सुखाधिक्यं मन्वानः। ततो—दैवाद् उपलब्धां तामपि दशामनुभूय ... कालेन क्षुद्रकोटावन्तर्भावयति तदुपरितनां च अवस्थामपेक्षते। एवमिद... भ्रमदेवास्ते न लभते स्थितिम्। नास्य सीमा जीवेनाप्तुं शक्या। ...हरिणा तृष्णाचक्रस्यास्य चित्रं मार्मिकत्वेनादर्शि—

> निःस्वो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो-
> लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति।
> चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्राह्मं पदं याचते
> ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिवपदं तृष्णावधिं को गतः॥

इति विषयसुखेच्छायाः निरन्तरमेधमानाया अन्ते संसारे वर्तमानो नाधि... जीवः, परिच्छिन्ना चेयं दुःखाकरोति। जीवात्मा चैतदेव सुखस्वरूपं वेत्ति। ...। आशानद्या उह्यमानं पारमाप्तुमिच्छन्तं वास्तविकसुखस्वरूपानभिज्ञं ...भूत्वोपदिशति श्रुतिः। यथा छान्दोग्योपनिषदि—

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखमिति" अयम्भावः—यो वै महान्निरतिशयस्तत्सुखम्, यतो भूम्नोऽर्वाक् सातिशयत्वादल्पं, तस्मिन्नल्पे सुखं नास्ति, अल्पस्याधिकतृष्णाहेतुत्वाद् दुःखमेव तत्, अतः परमार्थिको ...।

तल्लक्षणमाह श्रुतिः—"यत्र नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति ..."



पं० ओंकारनाथ जी लाटा
... ुर्वेदाचार्य (सरदार शहर)



आचार्य चन्द्रमौलि
अध्यक्ष शार्दूल ब्रह्मचर्याश्रम (बीकानेर)



भूरिदत्त जी शास्त्री
(सरदार शहर)



चि० प्रकाशचन्द्र
कुमारी शारदा

मृतम्, अथ यदल्पं तन्मर्त्यमितिलक्षणमुक्त्वा, स एवाधस्तादित्यादिना तदित-
ाभाव निर्दिश्य-अथात आत्मादेश ; आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मापश्चादात्मा
स्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैव सर्वमिति, निरतिशयानन्दस्वरूपात्मनएव
त्वं प्रसाध्य, एवं विजानत आत्मरत्यात्मक्रीडादिफलं ब्रूते। बृहदारण्यकेऽपि,
स्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति, इति भूम्न एव निर्देशः।

अत्रेत्थं सिद्धान्तो विचारशीलानां, यदयं जीव एव तावन्निरतिशयानन्दस्य
समहतो भगवच्छब्दवाच्यस्य परमात्मन एवांश भूतः "ममैवांशो जीवलोके जीव-
: सनातनः" इति गीतायां भगवदुक्तेः। केवलमविद्यादेव्याः कृपया पृथग्भूत
वृतस्वरूपः परिच्छिन्नश्च। एतादृशावस्थोऽपि स्वभावत एव स्वीय मुख्य स्वरूपावाप्त्ये
विक्षणमुत्सुक एव। यथा पृथिव्याः पृथग्भूतो लोष्ट ऊर्ध्वं क्षिप्तोऽपि स्वभावत एव
धर्वोमुखयाति। यथा वा सूर्यबिम्बात्पृथग्भूतस्याग्नेर्दीपस्य शिखा स्वभावत एव
र्ध्वमुखो भवति। एवमविद्या वशतः परमानन्दघनपरममहद्रूपाद्भगवत आभि-
ानिकपृथक्त्वेऽपि तदंशत्वाद्धेतोः स्वरूपभूतमहत्सुख प्रावण्यं जीवस्य चेत्? किमत्र
त्रम्। युक्तमेवैतत् सजातीयं सजातीयेनाकृष्यते इति वैज्ञानिक सिद्धान्तात्।
था च यानि गृहारामतनयजायाद्रवणजादिवृत्तिसुखानि यावत्स्वरूपानन्देनान्तर्भ-
न्ति तावदनुभूयन्ते, पुनर्नावतिष्ठन्ते, अतएव यस्त्यन्तरसुखापेक्षा जायते।
षामपि सैवावस्था। वृत्तिसुखानि च अनन्तानि परिच्छिन्नानि परिणामदुःखदानि
ात्येच्छाशान्त्यै पर्याप्तानि, अतो भूमसुखप्राप्तिरेव अथवास्य भूमसुखस्वरूपभाव
विच्छानिवर्तकः सेयं परमानन्दस्वरूपावस्था। इतः परमेवेच्छा भावादिच्छा निवर्तते,
यमुक्तेरपरमासीमा जीवन्मुक्तावस्था च उच्यते। परमस्या अवस्थायाः कथं
ाप्तिरिति किंकर्तव्यताविमूढं जीवं प्रति ब्रवीति करुणामयी भगवती श्रुतिः—"आहार
ुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः" इति।
अवच्छेदकोपाधिनिवृत्तिमन्तरा न जीवस्य भूमता, तन्निवृत्तिश्चान्तःकरणशुद्धि-
मपेक्षते, तच्छुद्धिश्च आहारशुद्धिं विना न, 'आह्रियन्त इत्याहाराः शब्दादिविषया-
स्तेषां शुद्धिश्च रागादिद्वेषैरसंसर्गः, तस्यां जातायां सत्त्वस्यान्तःकरणस्य शुद्धिर्निर्मला
भवति।' गीतायामेषोऽर्थ उक्तो भगवता यथा—

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥"

अनेन एवं क्रियामाणं कर्मोपासनादि चित्तशुद्ध्यानुपयोगीति दर्शितम्।

...च यथावगते भूम्नि ध्रुवा स्मृतिः अपरिच्छिन्ना स्मृतिः, तस्यां ... ...पाम ... ...न्यचानुभूतत्वात्काठिन्य... हृदयाश्र... ...नां विप्रमोक्षो-विनाशो भवतीत्यर्थः, एतदुत्तरोत्तरं यथोक्तमाहार शुद्धिमूलं त... कार्या, इति सिद्धम्।

एवमाहारशुद्धौ चित्तशुद्ध्या ब्रह्माकारा अखण्डा वृत्तिरुदेति, तया च स... ...ध्यानिवृत्तौ भूमस्वरूपोजीवो भवति, उपाधिनिवृत्तौ घटाकाश... ...।

एतेन वृत्तिव्याप्यत्वमेव ब्रह्मणः, न फलव्याप्यत्वं घटादीनामिवेति, ...तिविरणादिना स्पष्टमुपदर्शितम् इति।

यो वै भूमा तत्सुखमिति सारः श्रुतेः।

"सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवाय स्थितश्चलति तत्त्वतः॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः
यस्मिं स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥"

इत्युपनिषदुक्तस्योपबृंहणमिति शम्॥

साहित्यस्य सद्युत्पत्ति शास्त्रत्वसमर्थनम्

आचार्य चन्द्रमौलि

प्रिन्सिपल शार्दूल ब्रह्मचर्याश्रम, बीकानेर।

हितेन रसेन युक्तं सहितम् तस्य भावः साहित्यम्। अथवा हितं पिहि... ...तम् तत् सहितम् तस्य भावः। अथवा हितम् सन्निहितम् महाकविभिः सम्य... ... रक्षितं वा तस्य भावः। अथवा प्रहितं प्रेषितम् साक्षात्परमानन्दरूपं ... वा अन्तर्हितं निगृहीतेन मनसा ध्यातम् प्राचेतसद्वैपायन प्रभृतिभि... ...भि. वा हितम् सुहितम् तत्सहितम् तस्य भावमिति साहित्यम्। तत्र सर्व... ... प्राधान्यमेव। यद्यपि साहित्यपदं वाङ्मयेऽपि प्रयुज्यते तथापि "नमो... ... "येषां न चेतो ललनासुलग्नम्। मग्नं न साहित्यसुधा समुद्रे..." ति "साहित्य संगीत कलाविहीनः" इति "साहित्य पाथोनिधि मन्थनोत्थम्" इ... साहित्यादपि शास्त्राणि" इत्यादि प्रामाण्यवलेन लोकोत्तर चमत्कारका... ...सनीय वस्तु।

विशिष्ट काव्यालंकारत्वम् [illegible]

शास्त्रं हि नाम शासन करणम् इति स्वपुस्तकेषु अभिनवगुप्ताचार्याः साहित्यस्य शास्त्रत्वम् स्वीकुर्वन्ति एव। कविकुलशेखरः श्रीराजशेखरोऽपि काव्यमीमांसायाम् "पंचमी साहित्य विद्येति यायावरीयः" सा हि चतुष्टयीनामपि विद्यानां निस्यन्दः इत्युपवर्णयन् साहित्यस्य शास्त्रत्वं निर्विवादमुररीकरोति।

साहित्यस्य परमं रहस्यं रसञ्च साक्षाद् भगवती श्रुतिरपि प्रतिपादयति।

"रसो वै सः" "रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।" एवञ्च कमप्यनधिगतमर्थं प्रतिपादयन् साहित्यम् शास्त्रपदवीं प्राप्तुम् समर्थम्। अतएव नाभव्याः, नासुन्दराः, नारुन्तुदो न रूक्षाः, नोपेक्षिताः पदार्थाः कविसहृदयशिरोमणिभिः काव्यकर्मणे समाद्रियन्ते।

किन्तु अनाघ्राताः सुमनस इव लोभनीयाः सौन्दर्यसार सम्भृताः शर्कराकरम्बितदुग्धधारातोऽप्यभ्यधिकमधुराः सद्योऽभिनवाः उच्छलत्तरङ्गभङ्गा इव रसवृष्टिभिरार्द्रयन्तोऽर्थाः कविभिः संगुम्फ्यन्ते। एवं लौकिकाः शास्त्रान्तरप्रसिद्धिभाजोऽपि वस्तुभेदाः कविप्रतिभासंस्कृताः सन्निवेशविशेषवशमापद्यमानाः निर्माणकूटतप्ताः सहृदय हृदय प्रविष्टाः रसनिर्झरान् प्रवाहयन्ति।

अतएव ते कवयः अपरे प्रजापतय एव अतएव सुकवेः काव्ये स्वातन्त्र्यमुपदिशन्तः श्रीमदाचार्यानन्दवर्धनाः विषयमेनमुपोद्बलयन्ति।

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्व तथेदं परिवर्तते॥
श्रृंगारी चेत्कविः काव्ये जात रसमय जगत्।
स एव वीतरागश्चेत् नीरस सर्वमेव तत्॥

भावानचेतनानपि चेतनवत् चेतनानचेतनवत् व्यवहारयति यथेष्टं सुकविःकाव्ये स्वतन्त्रतयेतिदिक्।

पी० ए०, पी० एल०, काव्य सोर्थम्, मण्डावा (जयपुरम्)

"यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥" (गीता

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिषु प्रसिद्धः प्रवृत्तिनिवृत्तिमयः कर्मज्ञान
द्विविधः पन्थाः श्रीमद्भगवता:—

"लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥" (गी

इत्युपक्रान्तः। तत्र स्वरूपेण कर्मत्यागमुपदिशन् ज्ञानयोग उपनिषत्सु
प्रतिपादितः। आपाततः परस्परं विरुद्धानामौपनिषद्वाक्यानां समन्व
भगवता कृष्णद्वैपायनेन 'ब्रह्मसूत्राणि' व्यरचिषत। तेनैव चाकारणका
परमर्षिणा लोकानुजिघृक्षया श्रीकृष्णार्जुनसंवादरूपं ब्रह्मविद्याविषयकं
कर्मयोगशास्त्रं श्लोकानां सप्तशत्या व्यरचि। एवं ब्रह्मसूत्रयुता उपनिषदो
ज्ञानयोगं प्रतिपादयन्ति। श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदश्च कर्मयोगम्।
वस्थायां भिन्नत्वेन प्रतीयमानयोरपि कर्मयोगज्ञानयोगयोर्मोक्षरूपफलदृष्ट्या स
नोत्तराधार्यम्। यदाह स्वयमेव भगवान्—

"यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद् योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥" (गी०

भारतीयानां निखिलो जीवनसिद्धान्तनिचयो हि स ब्रह्मसूत्रोप
गीतासु च परिसमाप्तः। एतत्त्रयं समुचितं 'प्रस्थानत्रयी'त्यभिधीयते।
विरुद्धं किमपि मतं भारतीयैर्नादृतम्। अत एव तत्तत्सम्प्रदायप्रवर्तकैराचार्यैः
सिद्धान्तः प्रस्थानत्रय्या भाष्यविधानेन प्रतिष्ठापितः। तत्रापि सर्वे
लौकिकेभ्यः परमसरलदिशा कर्मबन्धप्रहाणं समुपदिशन्ती भगवती गीतोप
खिलमूर्धन्यतां धत्ते। अस्यां हि नरं प्रति नारायणस्योपदेशः सङ्कलितः। प्र
परमार्थयोरद्भुतं सामञ्जस्यं हरिणाहितकारिणा च यथोपपादितम्। युक्तमे
श्रीमच्छङ्कराचार्यैः—

"तदिदं गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसारसंग्रहभूतम्" इति।

इति पारमर्षं वचनं सर्वदैव हृदि ध्येयम्।

अधुनाचोपाक्रम्यते गीतासिद्धान्त विषयकं किञ्चित्। कर्माणि मनसा वचसा कायेन च प्रतिक्षणं यथाप्रकृति विधीयन्त एव सर्वजन्तुभिः।

"नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्" (गी० ३।५)

स्वरूपेण कर्मत्यागपक्षोऽसम्भाव्यत्वेन गीताकर्तुरसम्मतः। "नास्त्यकृतः कृतेन" "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु." "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" इत्यादि श्रुतिभि., "कर्मणा बध्यते जन्तुः" "अविरोधितया कर्म नाविद्या विनिवर्तयेत्" "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इत्यादि स्मृतिभिश्च कर्मणा बन्धकत्वं मोक्षानुपायत्वं च तत्फलस्य पुनरनित्यत्वं विशदं प्रतिपादितम्। एवं तुल्यबलविरोधे 'क पन्थाः' इति सन्दिहानं साधकं प्रति साहाय्यं सङ्क्रमयन्ती निःसंशयमुच्चैस्तरं ब्रूते भगवती गीता—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। (गी० २।४८)

एष कर्मयोगोपदेशः। अत्र द्वौ सोपानौ फलासक्तिपरित्यागः, सिध्यसिद्धिसाम्यं च।

लोकेन वेदेन च विहितः कर्त्तव्यकर्मकलापोऽनुष्ठेय एव, न कदापि परित्याज्यः।

"मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः" (गी० १८।७)

कर्त्तव्य कर्मणो पावनत्वेन 'यज्ञ' पदेनाभिधानम्। तेषामप्यनुष्ठानं फलाभिसन्धिवर्जितेन सता कर्तव्यं न सकामेन। कृते च कर्मणि फलस्य सिद्धावसिद्धौ च तुल्यादरेण भाव्यम्। एवं निष्कामेन समबुद्धिना कृतानि कर्माणि न कदाचिदपि बन्धकानि मोक्षमार्गविरोधकानि वा भवन्ति, प्रत्युत चेतोमलविशुद्धये तद्द्वारा मुक्तिलाभाय च कल्पन्ते। तथा ह्युक्तम्—

(क) यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय! मुक्तसङ्गः समाचर ॥ (गी० ३।९)

(ख) कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ (गी० २।५१)

(ग) समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते, (गी० ४।२२)

(घ) यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।

हिन्दीप्रभाकर भूरिदत्त शास्त्री पिप्पलवा
संस्कृताध्यापकः, स्टेट हाई स्कूल, सरदारशहर

अस्माकमार्यकुलसमुपलब्धजन्मनां निखिलजनानां संस्कृति सरित् सत
विरलरूपेण संस्कृतसाहित्येव प्रवहति। अस्या एव भाषाया अध्ययनाध्यापना
वयं वास्तविकं सभ्यता रहस्यमवगन्तुं पारयामः। अस्माकं धर्मो नीतिश्चास्यामे
विकलरूपेण अवलोक्येते। अलौकिकाश्चत्वारो वेदा धर्मशास्त्राणि ज्योतिषायुर्वे
शास्त्राणि इमामेवाश्रित्य धन्यधन्यतां गतानि। मोक्षैकमात्रसाधनानि सांख्यवेदा
शास्त्राणि अस्या एव कृपया जगत्कल्याणमुद्घोषयन्ति। एतस्या व्याकरणम् ना
राण, प्रभृती
तर्हि संस्कृ
ध्ययनेनैव तस्य हार्दिकी तृप्तिर्भवितुं शक्या।

जन्मनः पूर्वादारभ्य परं यावत् सर्वेऽपि संस्कारा अनयैव भाषया सम्पाद्य
अस्माकं नामानि अपि प्रायः संस्कृतमयानि भवन्ति। अस्माकं मातृभाषायां
शताः संस्कृतशब्दाः प्रयुज्यन्ते। अस्माकं राष्ट्रभाषा हिन्दी तु संस्कृतशब्देभ्य एव वैभ
शालिनी। संस्कृतस्य व्याकरणमेव अस्या व्याकरणम्। अलंकारछन्दःशास्त्रा
अपि संस्कृतस्रोतसो हिन्द्यां समागतानि। संस्कृतस्य कृपयैव हिन्दीभाषा बलवैभ
शालिनी। एवं विधा सर्वगुणसम्पन्नापि संस्कृतभाषा यदुभिर्विवेकविहीनैर्मृतेति
भाषा पदेन सम्बोध्यते तदा-अस्माकं हृदये अग्निरिव ज्वलति। मार्मिकी व्यथा
भवति। एवमन्वर्द्व्यमानसाः कर्मकारभस्त्रा इव श्वसन्तो वयं जीवन्तोऽपि मृता
दरिद्रतास्माकं जीवनसंगिनीवाहरहः स्नेहेन अस्मान् शुश्रूषते। भोजनवस्त्राभाव
ऽस्मान् बाधते। वयं गीर्वाणगिरुपासका राज्यसमाजसत्ताबहिष्कृताः सदा विषीदाम

एतस्या दैन्यदशायाः सन्ति कानिचित्कारणानि। पूर्वं तु आवश्यकजीवन
पयोगिसामयिकविषयैः सम्पुटीकृता नास्ति अस्माकं शिक्षा। इतिहासभूगो
गणितादिविषयेभ्यः शून्याः संस्कृतज्ञा उपहासभाजनानि भवन्ति सर्वत्र।

न च कश्चिद् आजीविका साधनं समुपलब्धुं समर्था वयम्। अतः सर्व
पाठशालासु उक्तविषयाध्यापनव्यवस्थावश्यम्भवितव्या। अपरतश्च संघटनप्र
ऽस्मिन् समये वय दूषयन्तश्छिन्नाभिन्नाश्च तिष्ठामः। अन्तरेण संघटनेन न कोऽ
अस्माकं कष्टेषु कर्णं ददाति। विना एवं न राज्यसत्तायामस्माकं हस्तक्षेपो भवि

दिव प्लावयामहे। कश्चिदेकोऽद्भुतो लब्धप्रतिष्ठोऽपि मतबाहुल्यं अन्ययुगे न किंचिदपि कर्तुं पारयति। विदेशीभाषाभाषायिस्मृतसंस्कृतभाषागौरवाः संस्कृतस्नेहवर्जिताश्च जना प्रतिदिनं भाषामिमामुन्मूलयितुं चेष्टन्ते।

अतोऽत्यन्तावश्यकताऽस्ति यत् संस्कृतज्ञा राजनीतौ प्रभूतं भागं गृह्णीयुः। अधिकसंख्यायां तत्र प्रविश्य वयं स्वकीयाम् अभीष्टां ध्वनिमधिकारिवर्गाय श्रोत्रेषु क्षेप्तुं शक्ष्यामः। जनसाधारणैर्विस्मृतप्रायं संस्कृतभाषामाहात्म्यं पुनरस्माभिरुच्चैः श्रावयम्। यतस्ते संस्कृतस्नेहशीला भवेयुः।

स्वच्छ प्रादेशिकभावना सर्वत्र लब्धसम्माना सुरैरपि अभ्यर्च्यमाना न केवलं भारते प्रत्युत विदेशेष्वपि गीतगौरवा गीर्वाणगीरियं पठ्यते पाठ्यते च। अस्या एव चरणशरणीकृत्य शैशवसंन्यस्त संसृतिमायः स्वामी शंकराचार्यः स्वसिद्धान्तं निखिले भारते प्रचचार। तथैव वयमपि अपिहितवदना अस्या अनुग्रहेण सर्वान् संस्कृतज्ञान अविच्छिन्नैक सूत्रे ग्रथितुं प्रभवामः। एतदर्थं कतिपयानां संस्कृतोत्थानपद्धकटीनां कर्मवीरप्रचारकाणामावश्यकतास्ति। ये सर्वप्रदेशेषु भ्रमन्तः संघटनं कुर्युः। यदि नाधिका पूर्वं शक्तिस्तर्हि राजस्थानीयानां संस्कृतज्ञानामेव संघटनं विधेयम्। यद्यपि संस्कृत-सम्मेलन-संस्था प्रचलति मन्दगत्या तस्यां स्फूर्तिं भरणाय कर्मठ कार्यकर्तॄणामभाव एव दृश्यते। अस्माभिः शीघ्रं सम्मिलय तस्याः बृहदधिवेशनस्य कृते प्रयतितव्यम्। संस्कृतपरीक्षोत्तीर्णा अपि सर्वत्र कार्यालयेषु कार्यं कर्तुम् क्षमा भवेयु इत्यपि चेष्टितव्यम्। साम्प्रतं तु अस्माकं परित्यज्य विद्यालयान् नान्यत्र प्रवेशावकाशः। तत्रापि एकोद्विको वा अध्यापको विलोक्यते। तस्यापि वेतनं न्यूनम् अन्यविषयाध्यापकेभ्यः। एषा विषमता न सोढुं शक्या। आंग्ल विद्यालयेषु अपि बहुषु वाणिज्य विज्ञानादि आवश्यकेषु वैकल्पिकेषु विषयेषु संस्कृतस्यनिहितत्वात् अल्पा एव छात्राः संस्कृतं गृह्णन्ति। बहुषु विद्यालयेषु कालेजेषु च द्वित्रा एव छात्रा दृश्यन्ते। केषु चित् नितान्ता भाव एव। दोषमिमं दूरी कर्तुम् संस्कृतस्यानिवार्यतार्थं प्रबलान्दोलनावश्यकता यो भूयते। कालेजेषु केवलं एम. ए. परीक्षोत्तीर्णा एव अध्यापका गृह्यन्ते। न शास्त्रिण आचार्याश्च यदा इमे तेभ्योऽधिकतरा योग्या भवन्ति। यदा साम्प्रतं बहुभिर्विश्वविद्यालयैः राष्ट्रभाषा हिन्दी माध्यमः स्वीकृतः तदा का नाम आवश्यकता आंग्ल भाषायाः। एवं कुठाराघातमपि अपनेतुम् चेष्टितव्यम्। एतदपि निर्णीतम् अधिकारिभिः यदस्मिन वर्षात् राजस्थान कास्यां जयपुरे स्थितः विश्वविद्यालयः हाईस्कूल कक्षायाः एकप्रकारेण संस्कृतं

हिन्दीप्रभाकर भूदेव शर्मा पिपलवा
संस्कृताध्यापक, स्टेट हाई स्कूल, मन्दसौर

अस्माकमार्यकुलसमुपलब्धजन्मना निखिलजनाना संहति सरित् विरलरूपेण संस्कृतसाहित्येव प्रवहति। अस्या एव भाषाया अध्ययनाध्या वयं वास्तविकं सभ्यता रहस्यमवगन्तुं पारयामः। अस्माकं धर्मो नीतिश्च विफलरूपेण अवलोक्येते। अलौकिकाश्चत्वारो वेदा धर्मशास्त्राणि ज्योतिष शास्त्राणि इमामेवाश्रित्य धन्यधन्यता गतानि। मोक्षैकमात्रसाधनानि साख्य शास्त्राणि अस्या एव कृपया जगत्कल्याणमुद्घोषयन्ति। एतस्या व्याकरणम् वधि उपमेतुम् शक्यम्। कालिदास, माघ, भारवि, भवभूति, हर्ष, बाण, प्र कविकुलचूड़ामणीनामन्तस्तलनिर्गतकवितारसास्वादो यदि कस्मै रोचेत तर्हि स ध्ययनेनैव तस्य हार्दिको तृप्तिर्भवितुं शक्या।

जन्मनः पूर्वादारभ्य परं यावत् सर्वेऽपि संस्कारा अनयैव भाषया सम्पा अस्माकं नामानि अपि प्रायः संस्कृतमयानि भवन्ति। अस्माकं मातृभाषाया शताः संस्कृतशब्दाः प्रयुज्यन्ते। अस्माकं राष्ट्रभाषा हिन्दी तु संस्कृतशब्देभ्य एव शालिनी। संस्कृतस्य व्याकरणमेव अस्या व्याकरणम्। अलंकारछन्दःशास्त्र अपि संस्कृतस्रोतसो हिन्द्यां समागतानि। संस्कृतस्य कृपयैव हिन्दीभाषा बलव शालिनी। एवं विधा सर्वगुणसम्पन्नापि संस्कृतभाषा बहुभिर्विवेकविहीनैर्मृत भाषा पदेन सम्बोध्यते तदा-अस्माकं हृदये अग्निरिव ज्वलति। मार्मिकी व्यथ भवति। एवमन्तर्दग्धमानसाः कर्मकारभस्त्रा इव श्वसन्तो वयं जीवन्तोऽपि मृ दरिद्रतास्माकं जीवनसंगिनीवाहरहः स्नेहेन अस्मान् शुश्रूषते। भोजनवस्त्राभ ऽस्मान् बाधते। वयं गीर्वाणगिरुपासका राज्यसमाजसत्ताबहिष्कृताः सदा विषीद

एतस्या दैन्यदशायाः सन्ति कानिचित्कारणानि। पूर्वं तु आवश्यकजीव पयोगिसामयिकविषयैः सम्पुटीकृता नास्ति अस्माकं शिक्षा। इतिहासभूग गणिताविषयेभ्यः शून्याः संस्कृतज्ञा उपहासभाजनानि भवन्ति सर्वत्र।

न च क्वचिद् आजीविका साधनं समुपलब्धुं समर्था वयम्। अतः सर्व पाठशालासु उक्तविषयाध्यापनव्यवस्थावश्यम्भवितव्या। अपरतश्च संघटनप्रधा ऽस्मिन् समये वय दूषयन्तश्छिन्नाभिन्नाश्च तिष्ठामः। अन्तरेण संघटनेन न कोऽ अस्माकं कष्टेषु कर्णं ददाति। विना इदं न राज्यसत्तायामस्माकं हस्तक्षेपो भवति

ः च राजनीतौ प्रवेष्टुं यत्नमुपक्रमामहे। अस्मात् क्षेत्रात् तु दूरादेव अलग्नाः सम्यका-
देव प्लायामहे। कश्चिदेकोद्विको वा संस्कृतप्रवेशोऽपि मतबाहुल्ये अन्यवर्गं न किंचिदपि
कर्तुं पारयति। विदेशीभारतभाषाविस्मृतसंस्कृतभाषागौरवाः संस्कृतस्नेहवर्जिताश्च
जना प्रतिदिनं भाषामिमामुन्मूलयितुं चेष्टन्ते।

अतोऽस्माकमावश्यकताऽस्ति यत् संस्कृतज्ञा राजनीतौ प्रभूतं भागं गृह्णीयुः। अधिकसंख्यायां तत्र प्रविश्य वयं स्वकीयाम् अभीष्टां ध्वनिमधिकारिवर्गाय श्रोत्रेषु प्रवेष्टुं शक्ष्यामः। जनसाधारणैर्विस्मृतप्रायं संस्कृतभाषामाहात्म्यं पुनरस्माभिरुच्चैः गायम्। यतस्ते संस्कृतानुशीला भवेयुः।

त्यक्त प्रादेशिकभावना मदत्र उपमम्माना सुरैरपि अभ्यर्च्यमाना न केवलं भारते प्रत्युत विदेशेष्वपि गीतगौरवा गीर्वाणगीरियं पठ्यते पाठ्यते च। अस्या एव चरणशरणीकृत्य शोकावसन्नेभ्य संसृतिमाय, स्वामी शंकराचार्य स्वसिद्धान्तं निखिले भारते प्रचचार। तथैव वयमपि अपिहितवदना अस्या अनुग्रहेण सर्वान् संस्कृतज्ञान अविच्छिन्नैक सूत्रे ग्रथितुं प्रभवामः। एतदर्थं कतिपयानां संस्कृतोत्थानपद्धतीनां कर्मठोत्प्रचारकाणामावश्यकताऽस्ति। ये सर्वप्रदेशेषु भ्रमन्तः संघटनं कुर्युः। यदि नाधिका पूर्वं शक्तिस्तर्हि राजधानीयानां संस्कृतज्ञानामेव संघटनं विधेयम्। यद्यपि संस्कृत-सम्मेलन-संस्था प्रचलति मन्दगत्या तस्यां स्फूर्तिं भरणाय कर्मठ कार्यकर्तॄणामभाव एव दृश्यते। अस्माभिः शीघ्रं सम्मिलत्य तस्याः बृहदधिवेशनस्य कृते प्रयतितव्यम्। संस्कृतपरीक्षोत्तीर्णा अपि सर्वत्र कार्यालयेषु कार्यं कर्तुम् क्षमा भवेयु इत्यपि चेष्टितव्यम्। साम्प्रतं तु अस्माकं परित्यज्य विद्यालयान् नान्यत्र प्रवेशावकाशः। तत्रापि एकोद्विको वा अध्यापको विलोक्यते। तस्यापि वेतनं न्यूनम् अन्यविषयाध्यापकेभ्यः। एषा विषमता न सोढुं शक्या। आंगल विद्यालयेषु अपि बहुषु वाणिज्य विज्ञानादि आवश्यकेषु वैकल्पिकेषु विषयेषु संस्कृतस्यनिहितत्वात् अल्पा एव छात्राः संस्कृतं गृह्णन्ति। बहुषु विद्यालयेषु कालेजेषु च द्वित्रा एव छात्रा दृश्यन्ते। केषु चित् नितान्ता भाव एव। दोषमिमं दूरी कर्तुम् संस्कृतस्यानिवार्यतायै प्रबलान्दोलनावश्यकता वो भूयते। कालेजेषु केवलं एम. ए. परीक्षोत्तीर्णा एव अध्यापका गृह्यन्ते। न शास्त्रिण आचार्याश्च यदा इमे तेभ्योऽधिकतरा योग्या भवन्ति। यदा साम्प्रतं बहुभिर्विश्वविद्यालयैः राष्ट्रभाषा हिन्दी माध्यमः स्वीकृतः तदा का नाम आवश्यकता आंग्ल भाषायाः। एवं कुठाराघातमपि अपनेतुम् चेष्टितव्यम्। एतदपि निर्णीतम् अधिकारिभिः यदग्रिम वर्षात् राजस्थान कारया जयपुरे स्थितः विश्वविद्यालयः हाईस्कूल कक्षायाः एकप्रकारेण संस्कृतं

...व करिष्यति। अयं तु महान् वज्रपातः। तेषामिमं निर्णयं प्रतिकर्तुं युक्त... विहार प्रान्तवत् संस्कृतमनिवार्यं विषयं कर्तुं द्रागेव प्रबलमान्दोलनं विधेयम्। ...। संस्कृतस्य संस्कृतज्ञानां च कृते स्कूलेषु कश्चिदपि स्थानं न स्यात्।

युगोऽयं पत्राणां। पत्राणि एव प्रधानतः प्रचार साधनानि। संस्कृतस्य ... एव पत्राणि प्रकाश्यन्ते। तान्यपि ग्राहक लेखकाभावे दैन्येनैव जीवन्ति। ...प न्यूना संस्कृते साप्ताहिक पत्रस्य तु आवश्यकता अस्ति एव। दैनिकस्य यदि न स्यात्। आलस्य व्याधि ग्रस्त वयं नव साहित्य निर्माणाय तु ... एव न। केवलं पूर्वजानां यशोगीतानि गायन्तः उत्थानमाशास्महे।

"लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्व चेष्टितान्येव नरं नयन्ति"। इत्युक्त्यनुसारेण साम्प्रतं केवलं तेषां गौरव गानेन न समुन्नता भवितुं शक्नुमः अस्माभिरपि ... चेष्टा विधेया। अपरश्च अयमपि महत्तमो दोषोऽस्माकं ... केचिद् विद्वांसो नवनवां रचनामवश्यं कुर्वन्ति, परन्तु ते स्वपाण्डित्य... कामा बाणदण्डिनो अनुसरन्ति। दुर्बोध गम्येन तेषां साहित्येन न ... लाभः प्रतीयते। साम्प्रतमेवं विधस्य सरल साहित्यस्यावश्यकतास्ति यत् ... विद्वांसोऽपि पठितुं बोद्धुं च शक्नुयुः। परन्तु एतेषां प्रकाण्ड पण्डितानां बोद्धुं समुचित संस्कृतज्ञानवन्तोऽपि न समर्थाः। सर्वैः संस्कृतज्ञैः एक विधौ अस्या भाषाया समुन्नतिः कार्या। उपरि निर्दिष्टान् दोषान् निवारयितुं सरलश्चायमेवोपायो यद्वयं द्वेषभावनां परित्यज्य अस्माकमेव लाभार्थं संघटितं कुर्याम। अनेनैव विधिना वयं गतगौरवं पुनः प्राप्तुं पारयामः। आशासे ... संस्कृतप्रेमिणश्च मदीयेऽस्मिन् हार्दिके विनये अवधिरं कर्णं करिष्यन्ति। ... विद्वांसः अस्मिन् विषये शीघ्रं क्रियात्मकं कार्यं कर्तुं साहसं करिष्यन्ति।

हरि हरादि गुणैक प्रकाशिनी,
ऋषिवरैः कृत पूत स्वलेखनी।
सकल कल्मष - कष्ट - निवारिणी,
विजयतां सतत सुर - भारती ॥१॥

॥ इति ॥

संस्कृत-साहित्य पर एक दृष्टि

पं० नवरंगराय जी शास्त्री

प्रधान अध्यापक, टीकमाणी वेद-वेदांग विद्यालय, राजगढ़

धर्माचार्यों का सदा से यही मत रहा है कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वर से है। इस विषय में अनेक धर्माचार्यों ने अपनी-अपनी भाषाओं को आदि माना है, किन्तु जब हमारी दृष्टि अनेक भाषाओं के मूल स्रोत की ओर जाती है, तब हमें यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है कि वैदिककालीन भाषा सब से पहले की भाषा होनी चाहिए। और आज के भाषा तत्ववेत्ताओं ने यह अच्छी प्रकार सिद्ध कर दिया है कि वेद सब से प्राचीन भाषा का उत्कृष्ट नमूना है। हमारे यहां के आचार्यों का भी यही मत रहा है कि भाषा की उत्पत्ति दिव्योत्पत्ति है। भाष्यकारों का मत है कि ईश्वर ने ऋषियों को भाषा सिखाई और ऋषियों से ही भाषा का स्रोत चला। निरुक्त को भाषा-विज्ञान का सर्वोत्कृष्ट और सर्वप्रथम ग्रंथ कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी। निरुक्त का मत है कि प्रवरों ने औरों को भाषा बताई और तभी से भाषा का प्रवाह चला। मनुस्मृतिकार का मत है कि वेदों की उत्पत्ति ओंकार से है। ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम ओंकार का उच्चारण हुआ, जिससे वेदों का निर्माण हुआ। आज के भाषातत्ववेत्ता इस बात को मानें अथवा न मानें, किन्तु मनुस्मृतिकार का मत कुछ अंश तक ठीक ही है। आज के भाषातत्ववेत्ता दिव्योत्पत्ति के सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। तथापि वेद की प्राचीनता में तो किसी को कोई सन्देह है ही नहीं। परीक्षा करने पर वेद भारतीय ही नहीं, संसार की बहुत-सी अन्य भाषाओं का भी आदिस्रोत निकलेगा। किसी वस्तु का जब निर्माण होता है, तब वह छोटे रूप में होता है। किन्तु जब उसका विकास होता है, तब वह सुविस्तीर्ण बन जाती है। ठीक इसी प्रकार हमारे वेद का विकसित एवम् सुविस्तीर्णरूप संस्कृत हुआ।

एक भाषा का प्रवाहकाल क्रमशः बदलता रहता है। इसी प्रकार वेद-भाषा का प्रवाह सुविकृष्ट संस्कृत के रूप में परिवर्तित हुआ। इस काल के आचार्यों ने वेद-भाषा को शुद्ध एवं परिमार्जित कर संस्कृत नाम से प्रसिद्ध किया। संस्कृत ही ने देश की राष्ट्रभाषा का शुभ किरीट पहना और अपनी यौगिकता, सरलता एवं मधुरता के कारण देश में सर्वसाधारण की भाषा संस्कृत हो गई, जिसमें सुदूर उत्तर से दक्षिण तक, पश्चिम से पूर्व तक भारत एकता के सूत्र में बंधा रहा। विदेशों

में भी जो भारतीयता की धाक आज तक जमी हुई है, यह उसी समय का फ
यद्यपि काव्य की दृष्टि से संस्कृत का विकसित रूप हमारे सामने ही आ
तथापि धर्मशास्त्र—स्मृतियों आदि का निर्माण ठीक इसी काल में हुआ था, जि
प्रमाण रामायण में इस प्रकार मिलता है :—

राजभिर्धृत दण्डाश्च, कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गं मायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥

ये श्लोक मनुस्मृति के हैं और रामायण में उदाहरण-स्वरूप मिलते हैं।

काव्य की सृष्टि

अर्थात् मनुस्मृति आदि धार्मिक ग्रंथों का निर्माण हो चुका था, तथापि सं
काव्य का सर्वथा अभाव ही था। इस बात की पूर्ति संस्कृत में रामायण
। इतिहास इस बात का साक्षी है कि क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को म
। देख कर आदि-कवि के हृदय में करुणा का स्रोत बह निकला और परिणाम
हमारे साहित्य में अलभ्य रत्न-काव्य की सृष्टि हुई! वाल्मीकी रामाय
. साहित्य में ही नहीं, अपितु अधुनिक या प्राचीन अन्य देशों के साहित
भी बेजोड़ ग्रंथ है। रामायण में मानव-जीवन के प्रत्येक अंग का चित्रण पूर्णतय
है। रामायण में पिता-माता, पति-पत्नी, भाई-बहन, सभी के कर्तव्य क
अच्छी तरह मिलता है। रामचन्द्र जी को वनवास की आज्ञा मिलती है
वे उसी समय राज्याभिषेक को छोड़कर वन जाने को तैयार हो जाते हैं। वे
माता से मिलने जाते हैं। उनको वनवास की आज्ञा से कोई दुःख नहीं
; किन्तु हर्ष से अपनी माता से कहते हैं।

इमानितु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च ।
वर्षाणि परम प्रीत्या स्थास्यामि वचने तव ॥

उत्तर में महाराणी कौशल्या अपने एकमात्र प्रिय पुत्र को वन जाने से नहीं
, परन्तु उसे यही कहती हैं कि :—

गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो ।
पुनस्त्वयो निवृत्तेतु भविष्यामि गतक्लमा ॥

कौशल्या जी रामचन्द्र जी को आज्ञा देती हैं और आशीर्वाद देती हैं—

महावनेऽपि चरतो मुनि वेषस्य धीमतः ।
तथा देवाश्च दैत्याश्च भवन्तु सुखदा सदा ॥

इस प्रकार का वर्णन अन्य काव्यों में नहीं मिल सकता। रामायण के बाद

यद्यपि संस्कृत-साहित्य की अभिवृद्धि होती रही, तथापि इस ग्रंथ के समान अन्य ग्रंथ का निर्माण नहीं हो सका। इस काल के बाद महाभारत-काल में फिर से भगवान वेदव्यास ने संस्कृत-साहित्य की बहुत अभिवृद्धि की। व्यास जी ने पुराणों के अतिरिक्त महाभारत, वेदान्त-दर्शन का भी निर्माण किया है। भारत तथा भारतीय जनता का मस्तक रामायण एवम् महाभारत ने उन्नत कर दिया। राजर्षि बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन ने महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर में दीक्षान्त भाषण देते हुए कहा था कि 'मुझे भारत में जन्म लेने का गर्व है कि जिसमें रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रंथ हैं। आज शेक्सपियर तथा मिल्टन का साहित्य सर्वोत्तम माना जाता है, पर मैं रामायण तथा महाभारत को पढ़ता हूं, तब वह साहित्य मुझे बच्चों की तुतली बोली के समान लगता है।' वास्तव में टण्डन जी का कहना सोलह आना सच है। आज भारत को इस बात का गर्व है कि भारतीयों ने ऐसे ग्रंथों का निर्माण किया कि जिनकी समानता करनेवाला कोई अन्य ग्रन्थ विश्व में आज तक नहीं बन सका।

भारतीय महर्षियों ने अपने निरन्तर परिश्रम से तथा सहस्रों वर्षों के अनुभव से उपनिषदों की रचना की, जो वेदों के कुछ ही काल बाद के कहे जा सकते हैं। उपनिषदों के अतिरिक्त न्याय-सांख्य आदि दर्शनों की रचना भी उन लोगों ने करनी शुरू कर दी थी। जितने भी महामान्य महर्षि हमारे देश में हुए हैं, प्रायः सभी की दृष्टि ऊपर लिखित शास्त्रों की ओर अधिक रही। अतएव आज यूरोप में यह बात कही जाती है कि हमारा दर्शन जहां समाप्त होता है, वहां से भारतीय दर्शनशास्त्र का आरम्भ होता है। न्याय, मीमांसा तो इससे भी कहीं अधिक उन्नत हैं। मीमांसा का महत्त्व हमारे साहित्य में इस प्रकार वर्णित है। यथा—

नैयायिका वा ननु शाब्दिका वा।
ग्रथी शिरः सुधम शालिनो वा॥
शास्त्रा इमे विभ्रति जैमिनीय,
न्यायो परोधे सति मौन मुद्राम्॥

हमें आश्चर्य तथा गर्व इस बात का है कि महर्षियों ने आयुर्वेद तथा ज्योतिष जैसे नीरस विषयों को भी अपनी कवित्वशक्ति द्वारा श्लोकमय बना कर सरस एवं जनप्रिय बनाया। ज्योतिष को वेदों का नेत्र बतलाया है और साहित्य में इसका महत्त्व इस प्रकार गाया गया है—

दूतो न सचरति खे न चलेच्च वार्ता।
पूर्व न जल्पितमिदं न च सगमोऽस्ति॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible]युर्वेद को [illegible] महत्व इस प्रकार बताया है—

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] ॥

आगे चल कर [illegible] समय तक बराबर सभी विषयों की वृद्धि [illegible] पर ज्योतिष, आयुर्वेद और काव्य की अभिवृद्धि [illegible] साम्राज्य-काल [illegible] होती रही।

संस्कृत का व्याकरण

[illegible] तो संस्कृत-साहित्य में व्याकरण की पुस्तकें शायद पहले से ही होंगी; [illegible] वाल्मीकि रामायण आदि काव्यों में व्याकरण के नियमों का अच्छी तरह [illegible] है। व्यासजी के विषय में तो यह कहावत कही जाती है कि—

यान्युज्जहार भगवान् व्यासो व्याकरणार्णवात्।

तानि शब्दरत्नानि सन्ति किं पाणिनीय गोष्पदे ॥

कुछ हो, हमें निरुक्त को छोड़ कर सबसे पहला व्याकरण का ग्रन्थ अष्टाध्यायी ही मिलता है। अष्टाध्यायी वर्णात्मक व्याकरण का सर्वश्रेष्ठ [illegible] इसकी समानता करनेवाला अन्य ग्रन्थ विश्व में अब तक नहीं बन सका [illegible] आगे बनने की संभावना ही है। पाणिनि के बाद कात्यायन हुए हैं। [illegible] शायद महानन्द के मंत्री थे। इसका प्रमाण कई एक लेखों से मिलता है। [illegible] ने पाणिनी व्याकरण में वार्तिक जोड़े।

[illegible] वार्तिको ने पाणिनीय व्याकरण को पूरा किया। कात्यायन के [illegible] पश्चात् भगवान् पतञ्जलि का आविर्भाव हमारे देश में हुआ। [illegible] अष्टाध्यायी के सूत्रों पर भाष्य किया। इनके ग्रन्थ का नाम महाभाष्य [illegible] त्मक व्याकरण का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बना। अष्टाध्यायी और [illegible]-विज्ञान के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त इस काल में और [illegible] व्याकरण के ग्रन्थ रचे गये, जिनका स्थान व्याख्यात्मक व्याकरण में [illegible] है। व्याकरण का महत्त्व हमारे साहित्य में इस प्रकार बताया

अङ्गीकृतं कोटिमितं च शास्त्रं नांगीकृतं व्याकरणं नयेन ।
न शोभते तस्य मुखारविन्दं सिन्दूरविन्दुर्विधवा ललाटे ॥

और भी कहा है कि—

यो वेद वेद वदन सदनं हि सम्यग्,
ब्राह्मया सवेदमपि वेद किमन्य शास्त्रम् ।
यस्माद्तः प्रथममेतदधीत्य धीमान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ॥

वैयाकरणभूषणकार ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

यद्यपि बहुनाधीपं पुत्र तथापि पठ व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकल शकल सकृत् शकृत् ॥

वैसे तो संस्कृत-साहित्य के सभी विषय परिपूर्ण हैं, परन्तु व्याकरण को सर्वो उत्कृष्ट कहा जा सकता है। केवल व्याकरण का ज्ञान अच्छी प्रकार कर लेने प सारा साहित्य ही उसके अधिकार में आ जाता है। वाल्मीकी रामायण में एव जगह वर्णन है कि जब पहले-पहल श्री रामचन्द्र जी की हनुमान जी से भेंट हुई त हनुमान जी ने वार्तालाप में सर्वत्र द्विवचन का ही प्रयोग किया था। उस समय रामचन्द्र जी ने प्रसन्न होकर कहा था कि—नूनं कृत्स्नं व्याकरणमनेन बहुधा श्रुतम्

आज जब हम सहस्रों वर्षों तक परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े रहे, त यह बात हमें असम्भव-सी प्रतीत होने लग गई है। परन्तु यह बात नहीं है कि रामायण में लिखा हुआ गलत है। रामायण में जो भी कुछ लिखा है, वह वास्त में सत्य है। यूरोप के बहुत से विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की उत्पत्ति वानर से हुई है। इस बात का प्रमाण हमें भविष्य पुराण से भी मिलता है, जं यूरोपियन कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले प्रायः सभी जीव मनुष्य की तरह ज्ञानकार होते थे। यही कारण था कि रामचन्द्र जी ने रीछ और वानरों की सेना बनाकर लंका पर विजय पा ली। अध्यात्म रामायण में भी एक जगह इस प्रकार का प्रसंग आता है कि हनुमान जी ने सूर्य से व्याकरण पढ़ा था। इस बात को कोई माने अथवा न माने, किन्तु मुझे तो सर्वथा सत्य ही मालूम होता है। हमारा देश सभी प्रकार से विश्व के सभी देशों से उन्नत था। आज अमेरिका और ब्रिटेन कुछ उन्नत हैं, तो अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रिय भाषा बन गयी है। प्रत्येक व्यक्ति को जीविका चलाने के लिए अंग्रेजी पढ़ना जरूरी है। यही हाल प्राचीन-काल में संस्कृत का था। जब हमारा देश उन्नत था, तब हमारी भाषा भी उन्नत थी। किन्तु देश की अवस्था गिरने पर भी संस्कृत का महत्त्व कम नहीं हुआ।

की विशेषता है। भाषा को स्थिर रखनेवाला व्याकरण ही होता है। व्याकरण अत्यन्त उत्कृष्ट होनेसे ही संस्कृत-भाषा आज तक स्थिर ... में भी रहेगी। अतएव यह मैंने पहले लिख दिया है कि संस्कृत की समानता करनेवाला व्याकरण अन्य किसी भी भाषा में नहीं।

नाटकों की उत्पत्ति

... में नाटकों की उत्पत्ति के विषय में बहुत से मत प्रचलित हैं। पर ... में एक धार्मिक मत ही माना जाता है। डाक्टर श्याम सुन्दर दास ... है कि एक समय इन्द्र और सभी देवता किसी कारण से बहुत दुःखी ... वे इसका उपाय पूछने के लिए ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने उन... के लिए नाट्य साहित्य की सृष्टि की। बाद में भरत मुनि ने इस... की। आदि कवि ने अपनी रामायण में नटों का उल्लेख अवश्य किया ...ों का उल्लेख कहीं नहीं किया। व्यास जी ने अपनी महाभारत ... उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि रामायण तथा महाभारत ... समय में नाटक खेले जाने लगे होंगे। महाभारत काल के बाद क्रमशः ... अभिवृद्धि होने लगी, जिसका विकसित रूप विक्रमादित्य के समय में ... हमारे यहां सदा से यही प्रथा रही है कि सभी नाटक सुखान्त हैं। ... विशेष नियम बनाये गये, जिनका संस्कृत के सभी नाटकों में पालन ... हमारा नाट्य-साहित्य हमारा कीर्तिस्तम्भ बना हुआ है।

... के समय के पश्चात् स्वतंत्र भारत में संस्कृत का स्थान

... चन्द्रगुप्त मौर्य से पहले यद्यपि भगवान बुद्ध का अवतार हो चुका था ... का भी प्रचार हो चुका था, परन्तु चन्द्रगुप्त का भारत में एकछत्र राज्य ... भाषा ने फिर करवट बदली और चाणक्य के प्रभाव में आकर अपना ...। चाणक्य का अर्थशास्त्र और कूटनीति जो आज भी विश्व... के नाम से प्रसिद्ध हैं, दोनों का उसी समय निर्माण हुआ था। ... इसी समय या इससे कुछ पूर्व अपने वार्तिकों की रचना की होगी। पतंजलि का भी आविर्भाव संभवतः उसी काल में हुआ था। चन्द्रगुप्त ... के समय तक बराबर संस्कृत-साहित्य की वृद्धि होती रही। और ... संस्कृत ही रही। इस समय में संस्कृत के जो भी ग्रन्थ बने, वे सब ... भाषा की दृष्टि से संसार की कमी को पूर्ण करनेवाले हुए।

अशोक के समय से पहले ही बौद्धधर्म के संसर्ग से देश के पूर्व भाग में प्राकृत का प्रचार कुछ रूप में हुआ था। लेकिन जब तक अशोक ने बौद्धधर्म ग्रहण नहीं किया था तब तक देश में प्राकृत का महत्त्व नहीं बढ़ सका था; वह देश के एक ही कोने में दबी रही, परन्तु अशोक ने जब बौद्धधर्म ग्रहण किया तो बौद्ध होने के नाते उन्होंने प्राकृत को अपने बृहद् साम्राज्य की राष्ट्रभाषा बना दी। अशोक के समय में यद्यपि संस्कृत का महत्त्व नहीं रहा तथापि अपनी शिक्षापूर्ति के लिए विद्वानों को संस्कृत का अध्ययन करना ही पड़ता था। इस प्रकार राष्ट्रभाषा प्राकृत होते हुए भी संस्कृत का महत्त्व विद्वत् समाज में तो था ही। अशोक के समय में देश में बौद्धधर्म का प्रचार पूर्णतया होने के कारण जनसाधारण की भाषा तो पाली ही थी। परन्तु विद्वानों का व्यवहार तो संस्कृत भाषा से होता था; किन्तु अशोक के समय के पश्चात् देश में संस्कृत का सम्मान नहीं रहा। इस काल में भाषा, धर्म और संस्कृति का प्रायः ह्रास हो चुका था।

श्री शंकराचार्य जी के आविर्भाव के समय तथा मध्यकाल में जिस देश में धर्म, संस्कृति, सभ्यता एवं प्राचीन भाषा का प्रायः ह्रास हो चुका था, उस विकट समय में प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने के लिये भगवान् शंकराचार्य जी अवतीर्ण हुए। पूज्यपाद शंकराचार्य जी महाराज ने प्राचीन धर्म तथा संस्कृति का जब प्रचार करना शुरू किया तब उन्होंने प्रचार के लिये संस्कृत को ही चुना। शंकराचार्य जी ने उपनिषदों पर भाष्य संस्कृत में ही किया। जो भी उन्होंने कुछ लिखा संस्कृत में ही लिखा। इस प्रकार देश में सनातनधर्म के प्रचार के साथ-साथ संस्कृत का प्रचार भी पूर्णतया हो गया। भगवान शंकर के निर्वाण के बाद महाराजा विक्रमादित्य का एक छत्र राज्य भारत में हुआ। विक्रमादित्य के समय में आकर संस्कृत का प्रचार फिर देश में हुआ। इसी समय देश में कालिदास जैसे महाकवि का जन्म हुआ। महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक थे। इस बात की पुष्टि उनके कई नाटकों से होती है। महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश, विक्रमोर्वशीय तथा प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला का निर्माण इसी समय में किया था। कई विद्वानों की धारणा है कि महाकवि कालिदास महाराजा भोज के समय में हुए थे। यह बात भी कुछ संगत-सी मालूम होती है, क्योंकि भोज की सभा में भी कालिदास नाम का कवि था। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि महाकवि कालिदास वही था। महाकवि कालिदास के अतिरिक्त इस समय भर्तृहरि भी हुए थे, जिनके बनाये हुए तीन

...मारे साहित्य में विशेष महत्त्व रखते हैं। कहा जाता है कि भर्तृहरि ... के बड़े भाई थे और किन्हीं कारणों से उन्होंने संन्यास ले लिया था ... हमारे साहित्य में और भी कतिपय काव्य लिखे गये, जिनमें महाकवि ... नैषधीय-चरित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। भवभूति का उत्तर रामचरित नाटक इस काल से पहले ही लिखा गया होगा।

...न इस समय में ही अलंकार-शास्त्र के प्रधान आचार्य्य मम्मट ने अपने ...काव्य-प्रकाश—की रचना की थी। इस प्रकार हर्षवर्धन के समय तक ... छत्र राज्य रहा और देश की भाषा भी एक ही रही। परन्तु हर्ष के बाद ... छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त हो गया। कई राजाओं ने अपने राज्यों की संस्कृत को ही रक्खा। परन्तु बहुत से राजाओं ने प्राकृत आदि भाषाओं ... दिया। ऐसा होते हुए भी हर्षवर्धन के काल से भोज के समय तक ... साहित्य की वृद्धि होती रही। हर्ष और भोज के समय के बीच में ... ने अपनी कादम्बरी की रचना की और महाकवि दण्डी ने दशकुमार... ...। ये दोनों ग्रन्थ साहित्य के उत्कृष्ट काव्यग्रन्थ हैं। इस काल के ... महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय और माघ ने शिशुपाल-वध लिखा। ... ही महाराजा भोज ने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम सरस्वती... है। यह लक्षण-ग्रन्थ है। भोज के समय के बाद पृथ्वीराज के समय ... में ग्रन्थ बनते रहे, परन्तु देश में अपभ्रंशों का प्रचार पूर्णतया हो गया ... के दरबार में एक काश्मीरी पण्डित रहता था, जिसका नाम ...। जयानक ने पृथ्वीराज-विजय नामक ग्रन्थ संस्कृत में लिखा। यह ...ज के समय का प्रामाणिक इतिहास माना गया है। सम्भवतः जयदेव ... गीति-काव्य गीतगोविन्द भी इस समय ही लिखा गया होगा। ... पश्चात् यद्यपि देश में मुसलमानों का राज्य हो गया था, परन्तु वह भी ... सहायक ही रहा। पृथ्वीराज के साम्राज्य के बाद मुगलसाम्राज्य ...। मुगलसाम्राज्य की जड़ मजबूत करनेवाले बाबर हुए। अकबर ...उद्दीन आदि प्रतापी मुसलमान बादशाह हो गये थे। अलाउद्दीन के ... के पण्डित चन्द्रशेखर के सुपुत्र महाकवि विश्वनाथ ने साहित्य... -ग्रन्थ बनाया था। अलाउद्दीन का उल्लेख साहित्य-दर्पण में इस ... है—यथा—

> सन्धौ सर्वस्व हरणं विग्रहे प्राण निग्रहः
> अलाउद्दीन नृपतौ न सन्धि न च विग्रहः

अलाउद्दीन के पश्चात् भारत में मुगलों का साम्राज्य हुआ। बाबर और हुमायूँ के काल में मुगलों के पैर भारत में अच्छी तरह नहीं जमे थे। हुमायूँ के पश्चात् अकबर ने अपनी सर्वप्रिय नीति के कारण मेवाड़ को छोड़कर समस्त भारत पर एक छत्र राज्य कर लिया। अकबर स्वयं पढ़ा-लिखा न होने पर भी विद्वानों का बड़ा आदर करता था।

अकबर के काल में संस्कृत-साहित्य के बहुत से दृश्य तथा श्रव्य काव्य लिखे गये। अकबर के बाद जहांगीर भारत का बादशाह हुआ। जहांगीर के समय में भी संस्कृत-साहित्य के कई ग्रन्थ लिखे गये। इसके बाद शाहजहां का शासन भारत पर हुआ। शाहजहां स्वयं एक विद्वान शासक था और विद्वत्प्रिय भी था। शाहजहां के काल में सिद्धान्त-कौमुदी (व्याकरण) भट्टोजि दीक्षित ने लिखी थी। अनुभूति स्वरूपाचार्य ने सारस्वत तथा रामाश्रम ने सिद्धान्त-चन्द्रिका इसी काल में लिखी। पण्डितराज जगन्नाथ ने रसगंगाधर इसी काल में लिखा। सम्भवतः ध्वन्यालोक भी इसी काल में लिखा गया होगा। जयदेव ने अपना चन्द्रलोक भी इसी समय में लिखा होगा। संस्कृत और हिन्दी-साहित्य दोनों ही के लिए शाहजहां का समय बहुत ही उपयुक्त रहा। वैसे तो प्रत्येक मुगल बादशाह ने संस्कृत-साहित्य तथा हिन्दी-साहित्य की सेवायें की थीं। किन्तु शाहजहां का काल हमारी भाषाओं के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में लिखा जायगा। शाहजहां के बाद भारत का बादशाह औरंगजेब हुआ, जो अपनी धर्मान्धता के कारण एक कट्टर शासक रहा। सुना जाता है कि औरंगजेब के काल में संस्कृत-साहित्य के कई ग्रन्थ जला दिये गये। औरंगजेब के समय में यद्यपि हमारे साहित्य पर आघात हुए तथापि भारतमाता की बहुत सी लाडली संतानों ने अपनी भारतीयता के साथ अपने साहित्य को भी कुछ अंशों में बचा लिया।

उत्तर में गोविन्द सिंह, दक्षिण में छत्रसाल और शिवाजी, राजस्थान में जयसिंह और यशवन्त सिंह ने अपनी निधि को सुरक्षित रखा। औरंगजेब ने अपनी कट्टरता के कारण अकबर के द्वारा स्थापित साम्राज्य की जड़ को खोखला बना दिया। इसी कट्टरता के फलस्वरूप मुगलों का भी सर्वनाश हो गया। औरंगजेब के पश्चात् यद्यपि एक-दो बादशाह और भी हुए, परन्तु उनका इतिहास में कोई महत्त्व नहीं। इसकी अदूरदर्शी नीति के कारण ही भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य हुआ। अंग्रेज पहले यही समझते थे कि भारतीय सदा से उपराम रहने वाले हैं अतः इनका साहित्य यहीं से आ सकता है। परन्तु जब अंग्रेजों का शासन

गया तब दायाद आदि मुकद्दमों में इनको बहुत कठिनाई होती थी
हृदय में आया कि भारतीय रीति-रिवाजों का ज्ञान करना जरूरी है
जौन्स एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं, जिनके नाम पर आज भी
। अंग्रेजों को गर्व है। जिनके नाम पर कलकत्ता में एक
है। सर विलियम जौन्स पहले एजेन्ट का काम करते थे। बाद
सेशन जज हुए। सेशन जज के पास दायाद सम्बन्धी मुकद्दमे बहुत
जौन्स को इन मुकद्दमों में बहुत ही कठिनाई पड़ती थी। जौन्स ने
भारतीय भाषा का ज्ञान करना चाहिए। अत्यधिक प्रयत्न करके
क पण्डित दो सौ रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त किया। पण्डित
शर्तें उसके सामने रखीं और जौन्स ने सहर्ष स्वीकार कर लीं।
का अध्ययन किया और मनुस्मृति तथा शकुन्तला नाटक का अनुवाद
।। मनुस्मृति प्रायः सभी देशों के शासन-विधान में रखी गई और
क को देख कर लट्टू हो गये। उसी दिन से भारतीय साहित्य की खोज
ने प्रारम्भ किया। जो आज तक बराबर करते जा रहे हैं। यह बात
कि अंग्रेजों की सदैव से ही दुरंगी नीति रही। ठीक यही नीति
में भी इन लोगों की रही। चित्त से तो अंग्रेज लोग संस्कृत
थे, परन्तु भारत में संस्कृत-साहित्य की वृद्धि के लिए उन्होंने कोई
। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों तक का कोई सम्मान नहीं रहा।
का कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, परन्तु जब तक मैट्रिक तक
, तब तक वह पढ़ा-लिखा कहाने का अधिकारी भी नहीं समझा
के विद्वान् जीविका के लिए मारे-मारे भटकते रहे। परन्तु
से कोई ध्यान नहीं दिया गया। अंग्रेजों का सदा से यही प्रयत्न
संस्कृत न पढ़ें, ताकि अपने साहित्य को भूल जावें। जिससे
सदा के लिए दृढ़ रहे। मुझे लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि
कारण अथवा अन्य किन्हीं कारणों से संस्कृत के विद्वानों की
। हमें गर्व इस बात का है कि इस विकट काल में संस्कृत के
पेट को बांध कर अपनी निधि को सुरक्षित रखा। इन अंग्रेजों ने
तपस्वियों को घृणा की दृष्टि से देखा, परन्तु जब संस्कृत-साहित्य
जायगा, तब इन वृद्ध महर्षियों के नाम स्वर्ण-अक्षरों में लिखे
के काम में संस्कृत का कोई महत्त्व नहीं रहा। गिड़िल पास

लड़के के सामने संस्कृत का आचार्य मूर्ख समझा गया ! स्कूल और कालेजों में भी संस्कृत को पर्य्याप्त महत्त्व नहीं दिया गया। जीविका चलाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अंग्रेजी पढ़ना अनिवार्य्य था।

इस प्रकार हम निस्संकोच कह सकते हैं कि वृटिश साम्राज्य संस्कृत के लिए अत्यन्त घातक रहा। इस काल में संस्कृत का विकास जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हो सका। संतोष इसी बात का है कि हमारे कर्मठ, पवित्र, पूजनीय विद्वानों ने इस निधि को सुरक्षित रखा। एक हजार वर्ष के पश्चात् लाखों विद्वानों के त्यागों से प्रसन्न होकर भगवान् ने हमें स्वतंत्रता प्रदान की। स्वतंत्रता मिलते ही देश में एक भयङ्कर तूफान आया। परन्तु देश के योग्य नेताओं ने इस विकट परिस्थिति में भी देश को बचा लिया। आज जब वह झंझावात कुछ कम हुआ तब देश में एक दूसरी लहर चल पड़ी, जो अब भी चल रही है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों ने अपने-अपने प्रान्तों की भाषा को देश की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न किया और वह आज भी किया जा रहा है। भाषावार प्रान्त बनाने की मांग तो बहुत ही बलवती हो रही है। इसका विरोध देश के कर्णधारों ने किया और अब भी कर रहे हैं। बहुत से लोगों ने इसका समर्थन किया। अब भले ही वे विरोध करने लग जायें। यह जो प्रांतीयता का प्रचार किया जा रहा है, वह एक भाषा से ही रोका जा सकता है। आज देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में पचास प्रतिशत् से अधिक शब्द संस्कृत के हैं।

तामिलनाड में	६०%	आसामी में	५०%
तेलगू में	८५%	गुजराती में	६०%
मराठी में	७०%	गुरुमुखी में	५०%
बंगला में	८०%	राजस्थानी	३०%
उड़िया में	६०%		

और हिन्दी तो संस्कृत से ही बनती है। यदि हिन्दी से संस्कृत को निकाल दिया जाय तो हिन्दी-भाषा का अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

विश्व की प्रायः सभी भाषाओं से संस्कृत का सीधा सम्बन्ध है। उपरोक्त कारणों से संस्कृत भारत की ही नहीं, विश्व की एकता कराने में समर्थ हो सकती है। हमें हर्ष इस बात का है कि काबुल के विश्वविद्यालय ने संस्कृत को अनिवार्य कर दिया है। यह उनका सही कदम है, जिसका हम बीस करोड़ भारतीय

ताकि देश भिन्न-भिन्न प्रान्तों में एक भाषा होने से एकता के
५ खेद के साथ लिखना पड़ता है कि विश्वख्याति प्राप्त
विरोध कर रहे हैं। प्रधान मन्त्रीजी देश के सिर पर एक
२ते हैं, जिसकी जड़-डाली या पत्ते कुछ भी नहीं। प्रधान मन
देश को राष्ट्र भाषा वही बन सकती है, जिसको सर्वसा
५ उनसे पूछा जा सकता है कि जिस भाषा को आप दे
रहे हैं क्या उसे देश की दश प्रतिशत जनता भी समझती है! प्र
सर्वथा निर्मूल है। यदि देखा जाय तो हिन्दी के नेताओ
संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के देश की राष्ट्रभाषा बनने से ही
जनता में प्रांतीयता की जो भावना घर कर रही है, वह
का भी कर्तव्य हो जाता है कि अंग्रेजी का जू
की निधि को सम्हालें। अपनी शिक्षा की पूर्ति के लिये प्रत्
चाहिए। संस्कृत के बहुत से ग्रन्थों का अभी तक पता
अन्वेषण करना संस्कृत एवम् हिन्दी के विद्वानों पर ही नि
विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, पाठशालाओं में हिन्दी
अनिवार्य कर देना चाहिये। जो संस्कृत के विद्वान आजक
की सेवा कर रहे हैं, उनका यथोचित सम्मान होना स्वत
है। यह बात देखी जाती है कि देश की उन्नति देश क
अतः देश की भाषा संस्कृत का ज्ञान होना प्रत्येक देश के
है, जिससे बहुत त्याग और बलिदानों के पश्चात् मिली
बना सकें तथा देशका मस्तक पुनः ऊँचा कर सकें। यह
है कि संस्कृत में संयुक्ताक्षरों की अधिकता होनेसे अत्यन्त
है, परन्तु संस्कृत देखने ही में कठिन है। थोड़ा अभ्यास होने
एवम् सरस बन जाती है। टाइप के लिए जो कठिनाई
बहुत ही सरलता से दूर किया जा सकता है। अंग्रेजी में
अक्षरों की बहुलता है, परन्तु तोभी वह अन्तर्राष्ट्रिय भाषा

इङ्गलिश से कहीं अधिक वैज्ञानिक भाषा है। कई विद्वानों का
हजारों शब्द अपने में मिला लेती है परन्तु यह गुण
सदा से ही रहा है। संस्कृत में किसी विदेशीय भाषा का

शब्द आसानी से मिलाया जा सकता है। विश्व की भाषायें प्रायः दो प्रकार की हैं—एक व्यास प्रधान दूसरी समास प्रधान। परन्तु संस्कृत में दोनों गुण हैं। यदि विवेक-पूर्ण दृष्टि से देखा जाय तो स्वतन्त्र भारत का कल्याण संस्कृत से ही है। इङ्गलिश या हिन्दुस्तानी से नहीं। यद्यपि संस्कृत-साहित्य में सर्व विषय-पूर्ण हैं तथापि आध्यात्मिक विषय पर समस्त देश के महर्षियों, महाकवियों तथा अन्य विद्वानों का अधिक ध्यान रहा। अध्यात्म विषय के द्वारा ही हमारे यहां असम्भव को सम्भव कर दिया गया। आज विश्व जिसको विज्ञान के बल पर कर रहा है उसको हमारे यहां अध्यात्म बल पर पहले ही कर दिखाया गया था। अध्यात्म-बलसे ही ऋषियों ने सम्राट वेन को हुंकार से पछाड़ दिया और उसके शरीर से पृथु जैसी शक्ति को निकाल लिया। विश्वामित्र ने अध्यात्मविद्या के प्रभाव से स्वर्गभ्रष्ट महाराजा त्रिशंकु को आकाश में ही धारण कर लिया। अतएव इसके लिये कहा गया कि—

ऐसी थी करामात जो हाथों को हिला दे।
जिन्दों को कर मुर्दा मुर्दों को जिला दे।

यह तो रही आध्यात्मिकता की बात, परन्तु क्या वेद, क्या [illegible], क्या पुराण, क्या उपपुराण, क्या धर्मशास्त्र, क्या दर्शनशास्त्र, क्या वेदान्त, क्या काव्य, क्या नाटक और क्या कोष—सभी विषय एक समान उमड़ते हुए मालूम होते हैं। जिस ओर दृष्टि दौड़ाओ उसी ओर का भाण्डार परिपूर्ण प्राप्त होता है। जिधर सूक्ष्म दृष्टि से देखो, उधर वही सिद्धान्त छलकता हुआ दिखाई देता है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

हमारे देश के प्रायः सभी विद्वान् सभी विषयों के [illegible] हुए भी [illegible] काव्य रसिक रहे हैं। अतएव देश में बहुत काल से कहा जाता है यथा—

[illegible]
[illegible]

यही कारण था कि हमारा देश विश्व का मुकुट [illegible] था और विदेशी लोग भी इसे देखने की उत्कट अभिलाषा किया करते थे। [illegible] हिन्दी के कवि ने कहा है—

यहाँ है सूक्ष्म ऋषियों की, यहाँ [illegible] है।
विदेशी लोग यह सब देख के, दंग को [illegible] है॥

आज हमें यह असम्भव-सा मालूम पड़ता है, परन्तु [illegible] हमें भी भारती की सेवा में लग जाना चाहिए, जिससे [illegible] [illegible]।

...और उसकी गतिविधि

लेखकः—पं० हनुमत्प्रसाद शास्त्री
विद्यावागीश, साहित्यायुर्वेदाचार्य, बीकानेर

शब्द सुनते ही—यह क्या वस्तु है? जीवन में इसका क्या है? यह कब आकृष्ट हुआ? कौनसी पुस्तकें साहित्य कहलाती हैं? और वर्तमान कैसा है? इसके सेवकों ने धर्म, समाज और पहुंचाई हैं या लाभ? साहित्य के सम्बन्ध में सामाजिक है? इत्यादि प्रश्न स्वतः उपस्थित हो जाते हैं। उन्हीं के सम्बन्ध प्रस्तुत लेख में किया जायगा।

हिता=स्थापिताः-सहितानां भावः साहित्यम्, अर्थात्, चार वेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—इन अठारह विद्याओं कहलाता है। अथवा 'सहितानां कर्म साहित्यम्' अर्थात्—के मेल से जो कार्य बने उसे 'साहित्य' कहा जाता है। अथवा इति सहितः, सहितस्य कर्म साहित्यम्, अर्थात् विश्व समाज, -भावना से प्रेरित महानुभाव की कृति को ही 'साहित्य' विविध व्युत्पत्ति को देखने से प्रत्येक व्यक्ति सहज में ही कि साहित्य क्या वस्तु है; तथापि इसका कुछ विवरण किया

समस्त विश्व 'शब्द' और 'अर्थ' के इन दो वस्तुओं के नहीं है। मनुष्य, पशु, पक्षी, मकान, नगर, आदि शब्दों मुंह आदि अवयवोंवाला प्राणी, शृङ्ग, पुच्छ, चार पैर वाला प्राणी, इत्यादि अर्थों के अतिरिक्त उस संसार में और कुछ का 'अर्थ' के साथ या 'अर्थ' का 'शब्द' के साथ कोई-न-कोई का उच्चारण करते ही अर्थ का तत्काल ज्ञान हो जाता देखते ही तत्काल उसके वाचक को शब्द का स्मरण हो जाता ईश्वरेच्छा कहा जाय, इच्छा कहा जाय, शक्ति कहा जाय, सर्वथा इसी सम्बन्ध के द्वारा शब्द अपने अर्थ का

बोधक माना जाता है। महाकवि दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में इस 'शब्द' को एक 'ज्योति' कहा है—

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

अर्थात्—यदि यह शब्द नामक ज्योति प्रकाशित नहीं होती तो यह समस्त विश्व अन्धकारमय हो जाता। बात ठीक है। कल्पना कीजिये यदि हम बोलना नहीं जानते, तो हमारे व्यवहारों का निर्वाह किस प्रकार होता? हम अपने मनोभावों को किस उपाय से व्यक्त करते? गूँगों के समान पाँच-सात वस्तुओं के लिए तो संकेतों से काम चला सकते थे। परन्तु संसार के अनन्त पदार्थों के बोधन का कोई उपाय नहीं था। आज की सी वैज्ञानिक उन्नति तो आपको दृष्टिगोचर हो ही नहीं सकती थी। जब वर्तमान पदार्थों के लिये ही यह दुरवस्था है तो भूत और भविष्यत् की वस्तुओं के लिये तो कहा ही क्या जा सकता है? यदि शब्दात्मक ज्योति हमारे पास नहीं होती, तो बड़े-बड़े महानुभावों की सुन्दर-सुन्दर कलाएँ, उत्तमोत्तम विचार, बड़े-बड़े गहन विज्ञान, शास्त्र आदि को हम किस प्रकार जान सकते? यह इसी शब्दात्मक ज्योति की कृपा है कि वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत धम्मपद, जैनसूत्र आदि अपार ग्रन्थराशिका लाभ हम ले रहे हैं। विश्वविधाता भगवान् और उनके अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम, कृष्णचन्द्र आदि के पावन चरित्रों का परिज्ञान इस शब्दात्मक ज्योति की कृपा से ही हम कर रहे हैं। वाल्मीकि और तुलसीकृत रामायण ने ही भगवान राम को हिन्दूजाति के रोम-रोम में रमा दिया है। उन्हीं की कृपा से हिन्दूजाति के निःश्वासोच्छ्वास में राम-राम का पवित्र उच्चारण होता है। श्रीमद्भागवत, महाभारत, और श्रीमद्भगवद्गीता ने ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को हमारे जीवनसर्वस्व के रूप में हमें बोधित करा रखा है। यही बात, गौतम बुद्ध, स्वामी महावीर, जगद्गुरु शङ्कर, आदि महापुरुषों के सम्बन्ध में है। भौतिक शरीर से हमारे पास न रहते हुए भी यशः-शरीर से रात-दिन प्रकाशित होने वाले कालिदास, बाण, भवभूति, सुबन्धु, दण्डी माघ, श्रीहर्ष, भारवि, भास, भट्टि आदि महाकवि भी इसी शब्द ज्योति के प्रखर प्रवाह से ही आज अमर हो सके हैं। यदि इस शब्दात्मक ज्योति की कृपा न होती तो, हम भी पशुओं की तरह आहार, निद्रा, भय आदि प्रवृत्तियों में ही निरत रहकर पशुतुल्य बने रहते और सचमुच मनुष्य होते हुए भी वन-

...आदि मन्त्रों में और ऋचाओं के द्वारा शब्द...
भिन्न-भिन्न से भरे हुए एक जनपद के रूप में दिखाई देते।
स विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि यह समान जगत् शब्द...
...है तथा प्रभु शब्द का क्या महत्त्व है। मुनियों ने इस शब्द...
...है। यह शब्द 'प्रभुसंमित' गुरुतुल्य सम्मित और 'कान्ता...
...में हमारे व्यवहार में आ रहा है। अच्छे कामों में प्रवृत्ति और
...के लिए विधिनिषेधात्मक उपदेश देनेवाले शास्त्र, प्रभुसंमित शब्द
...उसमें समस्त वेद धर्मशास्त्र आदि का समावेश हो जाता है।
...या स्वामी के समान माननी पड़ती है। अन्यथा प्रत्यवायी या
...रहता है। इसलिए इनको प्रभुसंमित या प्रभुतुल्य शब्द कहा

...महापुरुषों के चरित्रों और कथाओं द्वारा धर्म, अर्थ,
उपदेशों के प्रयोग और फलाफल का परिचय प्राप्त होता है,
...पड़ते हैं। जिस प्रकार एक सुहृत् या प्रेमी मित्र अपने प्रेमी
...से होनेवाले लाभ और बुरे कर्मों से होनेवाली हानियाँ
...कर्मों के प्रयोगात्मक दृष्टान्त दिखाकर मित्र को सत्कर्म में
...प्रवृत्त करता है, उसी प्रकार इस दूसरे शब्द की स्थिति है।
...है, किन्तु प्रेम से गुण, दोष-प्रदर्शनपूर्वक सदुपदेशों में
शब्दब्रह्म के इस दूसरे विवर्त में पुराण, इतिहास आदि
...जाता है। शब्दब्रह्म का तीसरा रूप है 'कान्तासम्मित'।
...कान्ता अपने प्रणयी पतिदेव को मधुर वचनावली और
अपनी ओर आकृष्ट करती हुई एवं उसके अन्तःकरण को
उसे सन्मार्ग में प्रवृत्त और दुर्मार्ग से निवृत्त करने में
माधुर्य, ओज-प्रसाद आदि गुणों से अन्वित एवं
...ों से अलंकृत सुन्दर-सुन्दर शब्दरचनाओं और उनसे
सहृदय मनुष्य के अन्तःकरण को रसामृत से विभोर
...। शब्दब्रह्म का विवर्त 'कान्तासम्मित' कहलाता है।
... चम्पू, आख्यायिका, आख्यानक, उपन्यास,

...की सुन्दर रचना करनेवालों को कवि कहते हैं।
...उसकी समष्टि को ही साहित्य कहना चाहिए।

कवि शब्द की इस व्यापक परिभाषा में ईश्वर से ले कर वर्तमान कवियों तक सबका समावेश हो जाता है। ईश्वरीय काव्य है 'वेद' और उसका अर्थ है विश्वप्रपञ्च। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" यह वेद-वचन एवं 'कविं पुराणमनुशासितारम्" यह श्री मद्भगवद्गीतावचन ईश्वर को 'कवि' ही सिद्ध कर रहा है। 'वेदशब्देभ्य एव निर्ममे' "भूतं भवद्भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति" इत्यादि प्रमाण यह स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि वेदानुसार ही विश्वप्रपञ्च हुआ है। बात ठीक है, किसी वस्तु के निर्माण के पूर्व उसका नक्शा, खाका और शब्दात्मक योजना (स्कीम) तैयार की जाती है। बाद में निर्माण होता है। यही बात वेद और उसके द्वारा निर्मित विश्व के लिये लागू होती है। ईश्वर के बाद ऋषि और महर्षि, मुनि, आचार्य, पण्डित, आदि वे सब जिन्होंने विश्वहित के लिए इस वाङ्मय की प्रवाहधारा को सतत जीवित और प्रवाहित रखा है 'कवि' कहे जा सकते हैं। वैदिक कोष निरुक्त में भी 'विपश्चित्' विपक्वमनाः, क्रान्तदर्शी, विमर्षी, मनीषी को ही कवि' बतलाया है। विप्र मेधावी, विपन्यु, आदि उसके पर्याय हैं। लोकवृत्त की नीची सतह से ऊँचा उठकर, वस्तुवृत्त की लौकिकता में अलौकिकता की क्रान्ति कर ; उसे विश्व के लिए आनन्दप्रद उपादेय 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' बना देनेवाला महामहिम महानुभाव ही 'क्रान्तदर्शी कवि' हो सकता है। और यह एक ऋषि में ही घटित हो सकती है। अतएव 'नानृषिः कविः स्यात्'। अर्थात् ऋषिभिन्न कवि नहीं हो सकता, ऐसा कहा गया है। इससे समझ में आ सकता है कि विश्व में कवि का क्या स्थान है और क्या महत्त्व है।

> "न स शब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला।
> जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवेः॥"

अर्थात् संसार में ऐसा कोई शब्द, वाक्य, विद्या, कला, जो कवि की रचना में नहीं आ सकता है, अहो! विश्वहित साधना में कवि के कन्धों पर कितना अत्यंत भार रखा हुआ है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि रचना-सौन्दर्य जितना एक काव्य के लिए आवश्यक है, उतना ही किसी दूसरे विषय के ग्रन्थ के लिए भी। ऐसा नहीं है कि 'शुद्धोकाममप्यनिर्दन्नमसृणरसहारी [illegible]' शब्दों का प्रयोग केवल काव्य में ही चमत्कारक होता है, अन्यत्र नहीं।

आप हिन्दू-संस्कृति के किसी भी ग्रंथ या विषय को उठा देखिए। उसका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति मिलेगा। यहाँतक कि संगीत और कामशास्त्र और [illegible] के विषय के ग्रन्थकारों ने भी उक्त विषयों का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति [illegible]

...न्तु किसी भी विषय की ओर मानव-समाज को अग्रसर करने के ... की आवश्यकता होती है या किसी प्रलोभन की। शासन का उससे सम्बन्ध बाह्य परिस्थितियों पर ही अधिक पड़ता है। अन्त-... प्रलोभन या आकर्षक वस्तु का ही प्रभाव पड़ सकता है। इस-... के समुन्नायकों ने मानवसमाज को समृद्ध, समुन्नत, स्वतन्त्र, सुखी ... लक्ष्य की ओर अग्रसर करने के लिए शासन बल की अपेक्षा ...पने प्रकार को ही अधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने भाषा और ऐसे सुन्दर ढङ्ग आविष्कृत किए हैं कि जिनके प्रयोग से मनुष्य ... हो जाता है, तथा उसमें छिपाए हुए निगूढ़ उपदेश को अनायास ...। इस प्रकार "रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्" हिन्दू ... लक्ष्य अनादि काल से इस शब्दब्रह्म के द्वारा अबाधित रूप से ... है।

साहित्य शब्द की व्यापकता

...गए वर्णन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि समस्त वाङ्मय ... पुस्तकें पत्र-पत्रिका आदि साहित्य शब्द के विशाल उदर में ... समय साहित्य शब्द का अर्थ अलङ्कार समझा जाता था। ... चाल की भाषा की अपेक्षा परिस्कृत-सुन्दर और सजीसजाई ... विषय की रीतियों का उल्लेख रहता था, क्योंकि केवल ... विषयों के परिज्ञानार्थ समस्त शास्त्रों और लोकवृत्त के सद्भाव से उसके 'रीति शास्त्र' को 'साहित्य शास्त्र' कहना उपयुक्त ही ... शब्द किसी भाषा या विषय के ग्रन्थसमूह या वाङ्मय के लिए ... भी इसका अर्थ इसी व्यवहार में पाया जाता है। 'हिन्दी ... हिन्दी के सब विषयों के ग्रन्थों का तात्पर्य समझते हैं। ...हित्य' से भी। 'वैदिक साहित्य', 'आयुर्वेदिक साहित्य' ... भिन्न विषयों के समस्त ग्रन्थों का ही अर्थ निकाल लेते ... शब्द से हमें मानव जीवनोपयोगी पढ़ने-लिखने की ... और विकास करनेवाली सभा का ही ज्ञान होता ... हैं जो किसी बात की तह तक न पहुंच कर ऊपर ही ...। उस दल के लोग अब तक भी 'साहित्य शब्द' को शायरों के मुशायरों में सुनाई जाने वाली कुछ तुकबन्दियों

कहानी, उपन्यास या नाटक आदि की परिधि या दायरे में ही घसीटते रहते हैं। परन्तु जब हम वेदों-स्मृतियों और पुराणों और इतिहासों तक में रोचक भाषा अलङ्कारों का प्रयोग और परिमार्जित शैली का प्रदर्शन पाते हैं, जिनके उदाहरण हम विस्तार-भय से देने में असमर्थ हैं तो कोई कारण नहीं कि हम उन्हें साहित्य के दायरे से बाहर कर दें। ज्योतिष, आयुर्वेद, कोष आदि विषयों की ग्रन्थ-रचना में भी सुन्दर-सुन्दर छन्दों, रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दों, सगुण और सालङ्कार भाषाओं का चमत्कारपूर्ण विन्यास होते हुए भी उन्हें साहित्य की सीमा से बाहर करने का कोई भी कारण नहीं है। रही रस-भाव-रसाभास-भावाभास-भावोदय-भावशान्ति-भावसन्धि-भावशबलता-वस्तुव्यंग्य-अलङ्कारव्यंग्य आदि की बात सो अभिव्यञ्जनपटु और रीतिकुशल कलाकार की कृति में ये बातें भी दुर्लभ नहीं है।

हमारा मत है कि आठ या नौ रसों, तैंतीस या परिगणित भावों का अनुसन्धान भरत आदि के द्वारा जो किया गया था वह साहित्य के क्षेत्र में प्राथमिक घटना थी। दोष-गुण-अलङ्कार तथा उपर्युक्त विषयों की अब वही नहीं रही है। भावशबलता तो आप भरतादि के समय में भी देख चुके हैं। यद्यपि वहाँ 'पूर्वपूर्वभावोपमर्दन उत्तरोत्तरभावोत्पत्तिः' ही भावशबलता थी, परन्तु अब तो सब वस्तुओं के मिश्रण से तारतम्य को लेकर इतनी सङ्कीर्णता हो गयी है कि उनका विवेचन और तदनुकूल साहित्य निर्माण का एक विशाल क्षेत्र और तैयार हो जाता है। कुशल कलाकार ज्योतिष, आयुर्वेद आदि सभी अङ्गों में उनका उपयोग कर सकता है।

सुतरां प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित और कान्तासम्मित इन तीनों रूपों में विभक्त शब्द ब्रह्म के समस्त प्रपंच को ही हम साहित्य शब्द से घोषित करने को तैयार हैं; और हमारे इस मत की पुष्टि "साहित्य परिषद्, संस्कृत सम्मेलन, आयुर्वेद सम्मेलन, कवि सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, राजस्थानी सम्मेलन' आदि उपसम्मेलनों से युक्त 'साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाओं की योजना से हो जाती है। क्योंकि वहाँ एकत्र होकर हम कुछ तुकबन्दियों का ही विचार नहीं करते परन्तु साहित्य के उपर्युक्त सभी अङ्गों का विचार किया करते हैं।

अब आप जान गये होंगे कि साहित्य क्या वस्तु है और मानव जीवन को वास्तविक मानव जीवन बनाने के लिए साहित्य की कितनी बड़ी आवश्यकता है। वस्तुतः साहित्यशून्य जीवन मानवजीवन ही नहीं है। इस अभिप्राय को महात्म्य',

ने जिन शब्दों में अभिव्यक्त किया है वे सुनने

...ा-विहीनः

पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

सारे वाङ्मय या समस्त शब्द प्रयोग
अलङ्कार, रीति, वृत्ति, शक्ति, दोष परिहार या दोष-
ऐसा है जो अलग-अलग एक-एक निबन्ध की
न्थ में भरत मुनि से लेकर आधुनिक लेखकों
एवं गहन विवेचन किये हैं। उन्हें ही पढ़कर
हैं और नवीन विषय लिखने के लिये अपनी
में अधिक कहने के लिए आपके समय को
विषय में सैकड़ों वार विमर्श होकर
ों को अलंकार शास्त्र का स्वयं गंभीर अध्य
ों को जानना चाहिये।

की दुर्दशा

विकृत रूप पर ही ध्यान देने की आवश्यक
राजकीय सहायता की नितान्त आवश्यकता
प्राप्त होती है, वह अच्छी तरह पनपती
है। उसमें मनचले लोगों की मनमानी
पाती है एवं उसका स्वरूप सुव्यवस्थित एवं
होता चला जाता है। जहाँ इस तरह
वहाँ कुछ परिषदें इन बातों का नियन्त्रण
जब तक राजकीय अथवा परिषदों का
सुलभ होता रहा तब तक साहित्य
क्या राष्ट्रभाषा सभी के लिए यह बात
है 'पतनान्ताः समुच्छ्रयाः' अर्थात्
में हुआ करता है। भारतवर्ष ने प्रत्येक
सम्पत्ति और विभूति लोकातिशायिनी
में सुखोपभोग के अतिरिक्त
कर्तव्य ही क्या रह जाता है। बस!

बाध और उच्छृङ्खल विलासिता का यहाँ भी आरम्भ हुआ। जहाँ समर्थ लोगों को अपने सुख और विलास की सामग्री जुटाने के लिए प्रयत्नशील बनना पड़ता था, वहाँ उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बने हुए अन्य लोगों को भी उनसे कुछ कम चिन्ता नहीं थी। इसी समय केवल चाटुकार "केवल कवयः कपय" कहलाने वाले लोगों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने कुछ बीघों के भूस्वामियों की और सीधामात्र दे देने वाले धनियों की ऐसी-ऐसी स्तुतियाँ की हैं कि जिन्हें देखकर भगवती सरस्वती फूट-फूट कर रो पड़ती है। ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति के घोर शत्रु इन लोगों ने जिस प्रकार सरस्वती के केश लुञ्चित किये हैं और जिस प्रकार के आघात सभ्यता एवं संस्कृति पर किये हैं, वे सिकन्दर, बाबर, चंगेज खां, तैमूरलंग और नादिरशाह के पाशविक अत्याचार से किसी प्रकार भी कम नहीं है।

संस्कृति पर आघात

चिकित्सा शास्त्र का यह सर्व-मान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक जीवन में एक रोग निवारिणी शक्ति होती है जिसे 'रोगक्षमता' या इम्यूनिटी कहते हैं। जब तक यह शक्ति विद्यमान रहती है तब तक कीटाणु अथवा अन्य बाहरी कारणों का शरीर पर कोई रोगारम्भक दुष्प्रभाव नहीं होने पाता। परन्तु जब इस 'क्षमताशक्ति' का अभाव हो जाता है तब कोई भी कीटाणु शरीरपर अपना प्रभाव कर देता है। शरीर की ही तरह यह बात समाज, देश, जाति के लिए भी लागू होती है। अपनी सभ्यता और संस्कृतिमें अपने देश और समाजमें जबतक हमारी अटूट श्रद्धा बनी रही तब तक हमारी उन्नति का प्रौढ प्रतापी प्रभाकर मध्याकाश में तपता रहा। परन्तु जब से पूर्वकथित केवल कवि-कपियों ने यहाँ चीत्कार मचाना शुरू किया और सभ्यता के अङ्गों में नखक्षत एवं दन्तक्षतों की बाढ़ शुरू की तब से ही हमारा समाज और देश पतनोन्मुख हो गया। वे वीर जो शेरों के जबड़े चीर देने की क्षमता रखते थे नीलोत्पल द्वंद से विनिःसृत शिव शरों से बिद्ध होने लगे। जो और कराल काल व्याल के फणों को पैरों से कुचल सकते थे वे कामिनियों की अलक नागिनियों से या वेणीपाश फणी से दुम दबाने लगे। केवल कवियों का अकाण्ड ताण्डव यहीं तक समाप्त हो जाता तो भी हमें कोई समालोचना का अवसर नहीं था। परन्तु जब हम इन भूकुंसों के इस भीषण आक्रमण को देखते हैं जिससे धर्म कर्म और आराध्यदेव शुद्ध नहीं बच सके, तब हमारी अन्तरात्मा बरबस तिलमिला उठती है। आप कहेंगे कि यह किस प्रकार कवियों को मुजरिम में खड़ा कर रहा है। क्या इस विषय में कोई प्रमाण भी दे सकता है? इसके

इन गाथाओं को वाग्देवतावतार भट्ट मम्मट ने व्यङ्ग्यार्थप्रधान उत्तम काव्य के उदाहरण रूप में रखा है। दूसरी गाथा का व्यङ्ग्यार्थ इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है:—

—"अत्र हि हरेर्दक्षिणनयनस्य सूर्यात्मकता व्यज्यते, तन्निमीलनेन सूर्यास्तसमयः, तेन च पद्मस्य संकोचः, ततो ब्रह्मणः स्थगनं, तथा सति गोप्याङ्गस्यादर्शनेनानिर्यन्त्रणं निधुवन विलसितम्॥" संस्कृतज्ञ सज्जनों के सामने इन शब्दों का और अधिक भाव खोलने की आवश्यकता नहीं है। कितना फूहड़, कितना वीभत्स, कितना गंदा चित्रण है यह ? ऊपर से तुर्रा यह है कि साहित्य की उच्च पुस्तकों में भी ऐसे श्लोक उद्धृत हैं। हम कानून के भय से हमें परीक्षार्थी विद्यार्थियों को ऐसा गन्दा साहित्य पढ़ाना पड़ता है। यदि हमारा हृदय विद्रोह करने को उतावला हो उठता है तो हमें वाग्देवतावतार की दुहाई देकर बलात् विवश कर दिया जाता है।

क्या इस प्रकार स्वयं अपने आराध्य देव अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म का उपहास करते हुए हम दूसरे लोगों और विधर्मियों के आक्षेपों और आक्रमणों का उत्तर दे सकते हैं ? कभी नहीं ! मैं तो यह समझता हूं कि धीरे-धीरे, नवीन नवीनतर और नवीनतम साहित्यस्रष्टाओं में जो अपनी संस्कृति के प्रति जो शिथिलता देखने को मिलती है उसका कारण इन्हीं आदर्श बने हुए गन्दे महारथियों की काली करतूतें हैं।

ब्रजभाषा

संस्कृत और प्राकृत के समान हमें वर्तमान हिन्दी की मूलभूत ब्रज भाषा से भी इतनी ही शिकायत है। ब्रजभाषा के लेखकों ने साहित्य में कम गन्दगी नहीं घुसेड़ी है। चराचरनायक-पवित्रपावन-विश्वभावन भगवान् श्री कृष्ण को इसी भाषा के लेखकों ने ही तो एक भ्रष्टचरित्र-कामुक के रूप में चित्रित कर भ्रष्ट-सभ्ट विष मारने के लिये लोगों का मन बढ़ाया है।

जब उनके सामने इस प्रकार की पोल और खुला मैदान पड़ा हुआ है तो फिर उनके आगे बढ़ने में रुकावट किस बात की है ? प्रगतिवाद, विनाशवाद, विध्वंसवाद, नष्ट-भ्रष्टवाद और कूड़ाकर्कटवाद आदि की दुहाई देते हुए यदि वे उत्पात करने के लिए प्रवृत्त होते हैं तो आश्चर्य क्या है ?

औचित्यरक्षा

हमारा यह आशय नहीं है कि शृङ्गाररसप्रधान रचनाओं का सर्वथा दूरी-

ललितकलाओं और कोमल साहित्य संगीत को सर्वा
"शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः" इस सिद्धान्त को हम भी मान
. तक शुचिता और उज्ज्वलता है और प्रगतिवाद आदि
जहाँ तक अपनी संस्कृति और सभ्यता पर कुठाराघा
. बातें हमारे लिए सह्य हो सकती हैं। हमारे देखते
आते हैं, कई वाद उठते हैं और गिरते हैं। जब [illegible]
उनके द्वारा होनेवाले समाजहित का विश्वास हमें नहीं
इन सड़ने-घुनने और बिगड़नेवाली वस्तुओं को अपने
स्थान देने के लिये तैयार नहीं।

आधुनिक साहित्य

'हितेन सह वर्तत इति सहितः, सहितस्य भावः
ौटी पर कसना चाहते हैं। अपना देश, समाज
की हित भावना से प्रेरित महानुभाव की कृति को ही
तैयार हैं। किन्तु कई प्रकार की राजनीतिक उथल-
ों ने साहित्य के वास्तविक रूप को आज छिन्न-भिन्न
धाँधली और अव्यवस्था घुस पड़ी है। बेचारा
है :—

परिचिताः शब्दाः कियन्तः क्वचित्,
परिपदः शान्ताः स्वतन्त्रं जगत्।
वयं वयमिति प्रस्तावनाङ्कृति-
गर्जत वयं मौनव्रतालम्बिनः॥

स्वतन्त्र है, वह बिना हड्डी की मांसपेशी का प
जिसे चाहे जिधर घुमालो, लोगोंको सामयिक पत्र-
देखे-सुने गये कुछ शब्द भी याद हो गये हैं।
ों बातों पर कोई कण्ट्रोल (कण्ठरोध) ही नहीं
बांधकर चुप हो गई हैं। संसार के सब क्षेत्रों में
र से वह चली है। इसलिये हे भाई! अब तुम
हैं' इत्यादि बातों के लिए स्वच्छन्द होकर
करो, लो बाबा! हम तो चुप मार कर बैठ

कवि की उपर्युक्त प्राचीन उक्ति आज भी हमारे लिए हमारे साहित्य के लिए ज्यों की त्यों लागू हो रही है। आज जिसके जीमें आता है वही कलम कुठार लेकर साहित्य कल्पद्रुम की जड़ें काटने को तुल जाता है। बरसाती कीड़ों की तरह इन नवीन साहित्यिकों के झुण्ड के झुण्ड आपको नगर-नगर ग्राम-ग्राम में देखने को मिल जाएंगे। अजीब फैशन, अद्भुत रुचि, अनोखा आचरण, बेढंगी रफ्तार, बेतालों की सी धुन का-सा उत्पात। किसीका नाम 'अञ्चल' किसी का 'चञ्चल' किसीका 'चञ्चरीक' किसीका 'बेढब' किसीका 'कुन्तल' किसीका 'निरशङ्क'! क्या कहना है इन विभिन्न पुच्छधारी जीवों की बहार का! ये चले हैं अपनी कृतियों से भारती के भाण्डार को भरने और साहित्यपाथोधि में नई-नई रचना तरङ्गिणियाँ बहाने!

कोई अपनी कृति को 'लहरी' नाम देकर प्रकाशित करता है तो कोई 'तरङ्गिणी' कोई 'वीणा' कोई 'तन्त्री' कोई 'दिल के अरमान' निकालता है तो कोई दिल के फफोले फोड़ता है, कोई 'झंकार' प्रकाशित करता है तो कोई 'उद्गार'।

अभी क्या बिगड़ा है। अभी तो 'निट्टो' 'गीढ' 'सिंघाण' 'थुत्कार' खंखार, मलाव, उबार तक का प्रकाशन देखना हमारे बदनसीब में और बदा है। हम चुप-चाप सारी बातें देखते जाएंगे और खून के आंसू पीते जाएंगे। यह तो हमारी आदत ही है। परन्तु जोर भी क्या? आज शासन पराया, सभ्यता पराई, स्टेज पराया और प्रेस पराया। हमारे हाथ में है ही क्या? किसी सभा सोसाइटी में इन थोड़े कि जबरदस्ती चुप रहने को, बैठ जाने को और आवेश में कह गए हुए शब्दों को वापस लेने के लिए बाध्य कर दिये जाते हैं। लक्ष्यभ्रष्ट होकर कोई भी समाज या देश अपनी उन्नति नहीं कर सकता। जब से इन पुछपुछे 'षट्पदों' ने इन इधर-उधर की बातों में मस्त होकर असली मकरन्द का पान छुड़ा दिया है, तभी से साहित्य की वास्तविकता जाती रही और हमारा देश पतनोन्मुख हो गया। अन्तराष्ट्रिय परिस्थिति, समय का प्रवाह, दूसरे देशों की प्रगतियां, अपने देश की सामयिक आवश्यकताएं, इत्यादि बातों पर जब कलाकार या साहित्य का ध्यान नहीं जाता, तब तक वह समाज या अपने देश की सेवा नहीं कर सकता।

मध्ययुग के कुछ ऐय्याश और आराम तलब राजाओं या मौलवियों को प्रसन्न करने के लिए कुछ चापलुस-टुकड़ेल कवियों ने हमारे साहित्य के [illegible] को कामि-नियों के कुच-कच-वर्णन और [illegible] धांत [illegible] भी आपको [illegible] वहां के

महाराज अशोक जब युद्ध-विरत होकर पूर्ण अहिंसावादी हो गये थे, त
ड़ों आदेशों में से यह भी एक आदेश था कि जो कोई जीवित प्राण
चलायेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। यह सत्य है कि इस आदेश
पोषण निमित्त हिंसा करने वालों का प्रतिरोध हो गया, परन्तु इसक
पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। और इसके बाद उस विद्या का
समूलोच्छेद ही हो गया। भला किस चिकित्सक को पड़ी थी कि रोगी
शस्त्रप्रयोग कर प्राणदण्ड मोल ले। परन्तु शल्यचिकित्सा जैसी
लोग सर्वथा नहीं छोड़ना चाहते थे, छोड़ने से काम भी न चलता था।
का भय होनेके कारण कुछ मनुष्योंने अपनी जीविका के लिये शस्त्रों
में अनुशस्त्रों का प्रयोग करना आरम्भ किया। सुश्रुत ने अनुशस्त्रों में
, तुम्बी, अग्नि, क्षार, आदि कहे हैं। अनुशस्त्र यद्यपि शस्त्रों के सम
तो नहीं थे, परन्तु शस्त्रप्रयोग के सर्वथा अवरुद्ध होने पर यह मा
निकला। इधर राजकर्मचारी आदि इसके विरोधी थे, वे उस स
का दुरुपयोग कर रहे थे। अनुशस्त्रों के प्रयोग से भी उन्हें वि
राजा तथा प्रजा' इस उक्ति के अनुसार समाज का वातावरण
ों से घृणा करने लग गया था। उस कार्य को करनेवाले समाज
एवं पतित समझे जाते थे। इसीलिए इन अनुशस्त्र प्रयोक्ता
कित्सक' शब्द से सम्बोधित किया गया, धीरे-धीरे समाज ने
समझ लिया। यह शब्द कुचिकित्सक से बिगड़ते बिगड़ते 'कूँचिया'
। यह है 'कूँचिया' शब्द का इतिहास, जो आपको ऊँचे शब्दों में
भूतगाथा सुनाता है।

"बधना"

समाज में स्त्रियों की चूड़ियाँ टूटने की घटना अधिकांश
स्त्रियाँ इस टूटने के स्थान में जिस शब्द का प्रयोग करती हैं,
हमें विचार करना है तथा यह सिद्ध करना है कि हमारी
है, जिसका अब भी किसी-न-किसी रूप में व्यवहार होता है।
। चूड़ी खण्डित हो जाने पर स्त्रियाँ चूड़ी बध गई,
जाती हैं।

यहाँ भाई हो नहीं, आरम्भ में मैं भी इस शब्द के अर्थ में
भी कर लिया कि ...

नष्ट हो गई है, उसके लिए बध गई कहना सभी को खटकेगा। परन्तु जब मैंने इस शब्द पर ध्यान दिया और गहरा विचार किया तो मुझे स्त्रियाँ ठीक रास्ते पर मालूम हुईं। माङ्गलिक व्यवहार में हमारी यह सदा से प्रथा रही है, कि उसके अमाङ्गलिक अंशको मांगलिकपुट से बोला जाय। सौभाग्यचिह्न चूड़े के अमङ्गल-स्वरूप खण्डनके लिए उन्होंने 'बध गया' शब्द इसलिए रक्खा कि साधारण लोग तो इसे 'वृधुवृद्धौ' का माङ्गलिक रूप समझें पर उच्चारण करनेवाले का आशय 'वर्ध-छेदने 'चुरादि का है, देखिए 'बधना' शब्द कैसे साहित्यिक भाव का द्योतक है। हमारी भाषा का अतीत कितना सुन्दर है, इसका ज्ञान हमें इन्हीं शब्दों से हो जाता है।

'पधारना'

आने और जाने में हमारे यहाँ समान भाव से इस का प्राचुर्यतः प्रयोग होता है। प्रणयी के लिए उसकी गमन बेला में 'जाओ' शब्द एक तरह अमङ्गल-बाचक है। भला बीकानेरी साहित्यिक अपने प्रेमपात्र को जाओ, जैसा कठोर शब्द क्यों कर कह सकते हैं? उन्होने इसके लिए सरल एवं भावमय शब्द रखा, वह यह है, आप किधर 'पाद धारेंगे, आने के समय आप किधर से पाद धार रहे हैं। आजकल की मारवाड़ी भाषा में आदर के लिए पग धरो, पगलिया धरो इत्यादि वाक्यों का प्रयोग हो रहा है। यह पाद धारण है, पधारना हो गया है।

'साम्परना'

खास्यो (खादिष्यसि), जास्यो (यास्यसि), करस्यो (करिष्यसि) आदि मारवाड़ी शब्द संस्कृत के अतिनिकट हैं। साम्परना शब्द भी वैसा ही है। चक्की से आटा पीसने के बाद आटे को इकट्ठा करने में इस शब्द का प्रयोग होता है, यह सम्परण शब्द का अपभ्रंश है, जो साहित्यिको का प्रचलित शब्द है।

"छोरी"

हमलोगों पर एक ऐसा भयङ्कर समय बीत चुका है कि जिसमें हमारी संस्कृति, धर्मनिष्ठता, मर्यादा को ध्वस्त करनेवाले साम्राज्य का छत्र रहा। उसका नाम था यवन-साम्राज्य। उस समय सुन्दर कन्या का जन्म होना दारुण दुःख का विषय था; क्योंकि कन्यापहरण प्रेमी यवन नवयुवकों के ऐसे कुकृत्य प्रचुर मात्रा में होते थे। प्रधानतः क्षत्रिय वर्ग में सुन्दर कन्या का जन्म होना बहुत ही कष्टदायक था। प्रथम तो क्षत्रिय जाति स्वभावतः स्वाभिमानिनी होती

महाराज अशोक जब युद्ध-विरत होकर पूर्ण अहिंसावादी हो गये थे, सैकड़ों आदेशों में से यह भी एक आदेश था कि जो कोई जीवित प्र... चलायेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। यह सत्य है कि इस आ... ...षण निमित्त हिंसा करने वालों का प्रतिरोध हो गया, परन्तु इ... ...त्सा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। और इसके बाद उस विद्या... से समूलोच्छेद हो हो गया। भला किस चिकित्सक को पड़ी थी कि ... शस्त्रप्रयोग कर प्राणदण्ड मोल ले। परन्तु शल्यचिकित्सा जै... को लोग सर्वथा नहीं छोड़ना चाहते थे, छोड़ने से काम भी न चलता थ... ...० का भय होनेके कारण कुछ मनुष्योंने अपनी जीविका के लिये शस्... में अनुशस्त्रों का प्रयोग करना आरम्भ किया। सुश्रुत ने अनुशस्त्रों ... तुम्बी, अग्नि, क्षार, आदि कहे हैं। अनुशस्त्र यद्यपि शस्त्रों के सम... ...न तो नहीं थे, परन्तु शस्त्रप्रयोग के सर्वथा अवरुद्ध होने पर यह का... निकला। इधर राजकर्मचारी आदि इसके विरोधी थे, वे उस सम... शब्द का दुरुपयोग कर रहे थे। अनुशस्त्रों के प्रयोग से भी उन्हें चि... 'यथा राजा तथा प्रजा' इस उक्ति के अनुसार समाज का वातावरण भी ...स्त्रों से घृणा करने लग गया था। उस कार्य को करनेवाले समाज में निन्दित एवं पतित समझे जाते थे। इसीलिए इन अनुशस्त्र प्रयोक्ताओं ...क' शब्द से सम्बोधित किया गया, धीरे-धीरे समाज ने अछूत उन्हें समझ लिया। यह शब्द कुचिकित्सक से बिगड़ते-बिगड़ते 'कूँचिया' ...। यह है 'कूँचिया' शब्द का इतिहास, जो आपको ऊँचे शब्दों में कुटिल भूतगाथा सुनाता है।

"बधना"

...रे समाज में स्त्रियों की चूड़ियाँ टूटने की घटना अधिकांश घटती ...। स्त्रियाँ इस टूटने के स्थान में जिस शब्द का प्रयोग करती हैं, उसी पर हमें विचार करना है तथा यह सिद्ध करना है कि हमारी आदिभाषा ... है, जिसका अब भी किसी-न-किसी रूप में व्यवहार होता है। वह ...। चूड़ी खण्डित हो जाने पर स्त्रियाँ चूड़ी बध गई, यह शब्द लाती हैं।

...रे कई भाई ही नहीं, आरम्भ में मैं भी इस शब्द के भ्रम में पड़ गया। ...स भी कर लिया कि स्त्रियाँ व्यर्थ असत्य भाषण करती हैं। जो चीज

नष्ट हो गई है, उसके लिए वध गई कहना सभी को खटकेगा। परन्तु जब मैंने इस शब्द पर ध्यान दिया और गहरा विचार किया तो मुझे स्त्रियाँ ठीक रास्ते पर मालूम हुईं। माङ्गलिक व्यवहार में हमारी यह सदा से प्रथा रही है, कि उसके अमाङ्गलिक अंशको माँगलिकपुट से बोला जाय। सौभाग्यचिह्न चूड़े के अमङ्गलस्वरूप खण्डनके लिए उन्होंने 'वध गया' शब्द इसलिए रक्खा कि साधारण लोग तो इसे 'वृधुवृद्धौ' का माङ्गलिक रूप समझें पर उच्चारण करनेवाले का आशय 'वर्धछेदने' चुरादि का है, देखिए 'वधना' शब्द कैसे साहित्यिक भाव का द्योतक है। हमारी भाषा का अतीत कितना सुन्दर है, इसका ज्ञान हमें इन्हीं शब्दों से हो जाता है।

'पधारना'

आने और जाने में हमारे यहाँ समान भाव से इस का प्राचुर्यतः प्रयोग होता है। प्रणयी के लिए उसकी गमन वेला में 'जाओ' शब्द एक तरह अमङ्गलवाचक है। भला बीकानेरी साहित्यिक अपने प्रेमपात्र को जाओ, जैसा कठोर शब्द क्यों कर कह सकते हैं? उन्होंने इसके लिए सरल एवं भावमय शब्द रखा, वह यह है, आप किधर 'पाद धारेंगे, आने के समय आप किधर से पाद धार रहे हैं। आजकल की मारवाड़ी भाषा में आदर के लिए पग धरो, पगलिया धरो इत्यादि वाक्यों का प्रयोग हो रहा है। यह पाद धारण है, पधारना हो गया है।

'साम्बरना'

खास्यो (खादिष्यसि), जास्यो (यास्यसि), करस्यो (करिष्यसि) आदि मारवाड़ी शब्द संस्कृत के अतिनिकट हैं। साम्बरना शब्द भी वैसा ही है। चक्की से आटा पीसने के बाद आटे को इकट्ठा करने में इस शब्द का प्रयोग होता है, यह सम्बरण शब्द का अपभ्रंश है, जो साहित्यिकों का प्रचलित शब्द है।

"छोरी"

हमलोगों पर एक ऐसा भयङ्कर समय बीत चुका है कि जिसमें हमारी संस्कृति, धर्मनिष्ठता, मर्यादा को ध्वस्त करनेवाले साम्राज्य का छत्र रहा। उसका नाम था यवन-साम्राज्य। उस समय सुन्दर कन्या का जन्म होना दारुण दुःख का विषय था; क्योंकि कन्यापहरण प्रेमी यवन नवयुवकों के ऐसे कुकृत्य प्रचुर मात्रा में होते थे। प्रधानतः क्षत्रिय वर्ग में सुन्दर कन्या का जन्म होना बहुत ही कष्टदायक था। प्रथम तो क्षत्रिय जाति स्वभावतः स्वाभिमानिनी होती

अपनी कन्या का किसी ओछे आदमी से विवाह करना भी अच्छा नहीं ..., ऐसा होना अपने लिए अपमानजनक बात समझती है। कन्या- तो फिर बहुत ही कलङ्कास्पद था। अतः उस समय, अपनी बेइज्जती होने ... होने से यह धारणा बन चुकी थी कि कन्या-जन्म से तो हमारी मूँछें हो गईं—या कट गईं। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी वस्तु को दिखलाने के लिए उसे बढ़ा कर कहा जाता है, जैसे अच्छे खिलाड़ी को हैं, 'अच्छा जानदार खिलाड़ी है, वस्तुतः जान तो सब में ही होती है, परन्तु दिखलाने के लिये जानदार विशेषण दिया गया है। वैसे ही कन्या- को कलह और कलङ्क का मूल समझ कर लोग कहते थे कि हमारी मूँछ ही ... अर्थात् मूँछ के एक आध बाल ही नहीं कटे, अपितु हमारी तो क्षौरी ही हो गई। क्षौर, जिसे भाषा में सुंवार कहते हैं उसका मूल है। अर्थात् क्या हुई हमारे कुल के लिए तो उस्तरे से तमाम बाल साफ कर देने क्रिया हो गई। उसी का अपभ्रंश छोरी है। छोरी स्त्रीलिङ्ग शब्द है। पुल्लिङ्ग छोरा है।

यद्यपि 'छोरा' में वह भाव नहीं है, जो 'छोरी' के अन्तस्तल में है तथापि स्त्रीलिङ्ग से पुल्लिङ्ग में और पुल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग में ऐसे शब्द आ जाया ।

यथा पुत्र शब्द का अर्थ संस्कृत में इस प्रकार है—पुं नाम्नोनरकात्त्रायत इति ... पुं नामक नरक से जो त्राण करे उसे पुत्र कहते हैं। यह पुत्र का ही धर्म ...द्ध और और्ध्वदेहिक कृत्य से अपने मातापिता को नरक से उबारे। पुत्री ... ऐसी शक्ति ही है और न उसे ऐसा करने का शास्त्रीय अधिकार है, परन्तु पुत्र शब्द का स्त्रीलिङ्ग करने के लिए उसे पुत्री कह देते हैं। उसी तरह ... का पुल्लिङ्ग छोरा है, छोरी शब्द की अर्थाभिव्यक्ति उसमें नहीं है।

गोधा

... अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले शब्द निम्न हैं—

गोधा, साण्ड, यू० पी० में इसे बिजार कहते हैं, खेतड़ी (जयपुर) में इसे ... कहते हैं, ये भी संस्कृत के विशुद्ध शब्द हैं।

गोधा

...पु दधाति गर्भमिति गोधा। गौओं में गर्भाधान करनेवाला।

साण्ड

अण्डैः सहितः साण्डः। अण्डकोष सहित को सांढ कहते हैं। कुंये या गाड़ी में जुतनेवाले बैल के अण्डकोष बेकार कर दिये जाते हैं और इसके पूर्ण रहते हैं।

बिजार—(यू० पी०)

विशिष्टो जारः-बिजारः। जार शब्द का अर्थ स्पष्ट है, यह गो-जाति के लिए विशिष्ट जार है।

आङ्किल

क्योंकि इस पर राजकीय आज्ञा से अङ्क लगाये जाते हैं। इसलिए यह अङ्कित है, इसी का अपभ्रंश आंकिल है।

हणं

यह शब्द प्रचलित हिन्दीभाषा के अभी शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है बीकानेरी इसे विशेषतया व्यवहार में लाते हैं। इसका मूल 'अधुना' है। बीकानेरी भाषा में न को ण तथा आदिम स्वर का लोप देखा जाता है। जैसे भणो, घण, आदि। अधुना शब्द ज्यादा घिसा हुआ हणं के रूप में है।

ऐसी ही अन्य शब्दावली

पीहर—पीयर=पितृगृह।

भाभी-भौजाई,=भ्रातृभार्या-भ्रातृजाया।

ससी=श्वश्रू।

बीन=विशिष्टं इनः=बीनः।

रण्डासा=रण्डासा, (रण्डानस्यति कृत्वेति)

खुरपा=क्षुरपाः, क्षुरपाद्।

झांझरका—यह अनुकरण शब्द है। प्रातः जिन दिनों प्रत्येक घर में भगवान् की आरती होती थी, और उसमें वाद्य-विशेष से जो 'झां-झां' शब्द प्रकट होता था, तब से यह नाम प्रातः ब्राह्ममुहूर्त के सूचक रूपमें पड़ा। झां-झां शब्दं इति-आरते असौ॥

डांगर—डांगं—यष्टिं राति आदत्तेऽसौ।

गुवाड़—गवाट, मकानों के आगे, गौओं के दूहने की जगह।

पाखाड़—पय.खाड। अर्धसंस्कृत शब्द है।

पप्पी—पूर्षिः।

जेठौ—जयिनी।

रन्दांवली—रन्धावली, आदि आदि।

संस्कृत-साहित्य का महत्व

ले०—कविराज सत्यनारायण प्रसाद शास्त्री
साहित्यालङ्कार, काव्यकलाधर, साहित्यायुर्वेदाचार्य,
राजगढ़ बीकानेर (वृहद्राजस्थान)

आज का युग विज्ञान का युग है। प्राचीन आदर्श पुरुषों एवं आप्तों के … को बिना ननु नच यथावद्रूपमें आदर से माननेवाला युग समाप्तप्राय हो … । संस्कृत के महत्त्व को यद्यपि सभी जानते हैं, परन्तु उसे भी आज प्रमाणों … करने की आवश्यकता है।

वर्तमान समय में जितनी भी भाषायें प्रचलित हैं, उन सब में संस्कृत ही … है—यह कथन अतिशयोक्ति नहीं है। मैं तो यह कहने में भी संकुचित नहीं … कि संस्कृत ही समस्त भाषाओं का उद्गमस्थान है। इन कथनों को आगे … सिद्ध किया जायगा।

संस्कृत शब्द 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु में 'क्त' प्रत्यय के जोड़ने से बनता है। … एवं 'परि' उपसर्ग जोड़ने से जब 'कृ' धातु का अर्थ 'भूषण' या 'संघात' होता … 'सुट्' प्रत्यय होने का नियम रहने से संस्कृत का अर्थ सुसंहत या परिष्कृत … ही होता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में संस्कृत भाषा का संस्कृत नाम बहुत कम मिलता है। … संस्कृत शब्द का प्रयोग वाल्मिकीय रामायण में उपलब्ध होता है। यथा—

"यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥"

महर्षि यास्क और पाणिनि के ग्रन्थों को देखने से यह जाना जाता है कि … समय में समस्त लौकिक व्यवहार इसी भाषा से होता था। परन्तु इसे … न कहकर भाषा नाम से ही सम्बोधन किया जाता था। यथा—

भाषायामन्वध्यायश्च। निरुक्त १।४
भाषायां सदवसश्रुवः। अष्टाध्यायी। ३।२।१०८

समय की गति बड़ी विचित्र है। ज्यों-ज्यों इस भाषा का प्रयोग सर्व… में कम होने लगा, तथा इस सर्वगुण-सम्पन्न भारती के पुनीत पद पर … का अधिकार होने लगा, तब उस समय के विद्वान प्राकृत से इसका भेद … करने के लिए इसे संस्कृत भाषा के नाम से पुकारने लगे; क्योंकि प्राचीन

महाकवियों द्वारा यह भाषा अपनी कृतियों में प्रयुक्त की गई थी, तथा पाणिनि कुमारदास प्रभृति विद्वानों से परिष्कृत की गई थी।

संस्कृत नाम की यथार्थता

जो वस्तु पूर्णतया पकी न हो, उसे पूर्ण पक्व न कह कर पच्यमान ही कहा जायगा एवं जो वस्तु पक गई हो उसे पक्व ही कहेंगे। ठीक इसी प्रकार जो भाषा पूर्ण परिष्कृत न हो, उसके धीरे-धीरे संस्कार होते जा रहे हों उसे संक्रियमाणभाषा ही कहा जायगा; क्योंकि उसमें परिवर्तन को अवकाश रहता है। उदाहरण से इसे यों समझिए कि संसार में कोई ऐसी भाषा नहीं, जिसमें १-२ शतक के बाद परिवर्तन नहीं हुआ हो। संस्कृतेतर भाषा के रूप और शब्दों को तो दूर रखिए, व्याकरण में भी कुछ वर्षों में अन्तर आ जाता है। पर संस्कृत की ओर जब दृष्टिपात करते हैं, तब निर्विवाद यह कह सकते हैं कि 'पाणिनि', 'कात्यायन', पतञ्जलि' के द्वारा संस्कार करने पर इस भाषा में नाममात्र को भी परिवर्तन नहीं हुआ। अतः सिद्ध हुआ कि वास्तव में यही भाषा संस्कृत, अविकृत और परिष्कृत है।

यद्यपि लौकिक संस्कृत के लिए ही संस्कृत शब्द पहले रूढ हुआ था, परन्तु वैदिक संस्कृत को भी लौकिक संस्कृत की जन्मदात्री होने के कारण संस्कृत नाम से सम्बोधन किया जाने लगा।

प्राचीन वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में भेद नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु इस कथन में कोई आपत्ति नहीं कि दोनों में उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है।

कुछ एक उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है।

(१) युष्मद् एवं अस्मद् की चतुर्थी तथा सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में युष्मे एवं अस्मे रूप होते हैं। यथाः—"अस्मे इन्द्रा बृहस्पती" "न युष्मे वाजबान्धव" इत्यादि।

(२) लोट् लकार के मध्यम पुरुष के बहुवचन में त, तन, थन, एवं तात् प्रत्यय होते हैं, यथाः—"शृणोत ग्रावाणः सुनुतन यविष्ठन कृणुतात्"।

(३) तुमुन प्रत्यय के अर्थ में 'ध्यै' 'से' आदि प्रत्यय होते हैं—यथाः— "पिबध्यै", "जीवसे" इत्यादि।

इस प्रकार के उदाहरणों की संहिता ग्रन्थों में अल्पता नहीं। इस प्रकार के और भी बहुत से प्रत्यय होते हैं, जो कि सिद्धान्तकौमुदी की स्वर वैदिकी प्रक्रिया अथवा प्रतिशाख्य के अध्ययन से जाने जा सकते हैं।

ऋक् संहिता के बहुत से प्रयोग आरण्यक, ब्राह्मण संहिता एवं उपनिषदों में मिलते, जिससे इनकी अर्वाचीनता स्पष्ट सिद्ध होती है। ऐतरेय एवं शतपथ देखने से भी यही प्रतीत होता है कि इनकी भाषा संहिताग्रन्थों के पश्चात् ।

परन्तु तो भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि शतपथ आदि की भाषा संस्कृत से पूर्ण साम्य रखती है। इस विषय के १-२ उदाहरण नीचे दिये हैं।

पृथिव्य (पृथिव्याः) राजा स्याः, सविता वै प्रसवानामीशे (ईष्टे) अक्षत वा अस्य दन्ताः)॥

इसी प्रकार वैदिक प्रत्ययों में शनैः शनैः परिवर्तन होने लगा। यास्क के में भी आर्षप्रयोग प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। रामायण, महाभारत, एवं में भी पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध बहुत से उदाहरण मिलते हैं। पाणिनि, के बाद भी कुछ परिवर्तन हुआ, परन्तु महाभाष्य के पृथ्वी पर प्रचलित पश्चात् तो इस भाषा में परिवर्तन नहीं हुआ, यही कहना श्रेष्ठ होगा।

पाणिनि के काल में संस्कृत सर्वसाधारण की भाषा थी तथा इसे संस्कृत न केवल भाषा कहते थे। परन्तु महाभाष्य-प्रणयनकाल में यह भाषा सर्व की भाषा न रह कर शिष्टों की भाषा हो चुकी थी, महाभाष्य देखने से होता है। शिष्ट शब्द विद्वान् ब्राह्मणों के लिए ही रूढ था, परन्तु ब्राह्मणे भी जो विद्वान होते थे, इसका प्रयोग सुचारु रूप से कर सकते थे। किसी के साथ 'सूत' शब्द पर अश्वचालक का शास्त्रार्थ हुआ था, इस के कथानक से ऐसा सिद्ध होता है। शिष्टों के अतिरिक्त साधारण लोगों उस समय में संस्कृतेतर प्राकृत थी।

बौद्धों के त्रिपिटक एवं जैनों के सूत्र ग्रन्थों तथा अशोक के शिलालेखों से चलता है, कि उस समय साधारण लोगों की प्राकृत भाषा भी कई रूप कर चुकी थी। संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटक-ग्रन्थों में भी कई तरह की प्राकृत होता था। यह नाटक ग्रन्थों के अवलोकन से जाना जाता है।

संस्कृत की सर्वश्रेष्ठता

संसार को उपलब्ध भाषाओं में संस्कृत ही सर्वश्रेष्ठ है, यह पहले लिखा जा । संस्कृतेतर भाषाओं के या तो आधार ही गलत हैं, या उनके स्वरूप में है। अन्य भाषाओं में आज कल अंग्रेजी का ही बहुत प्रचार है, एवं

यही विश्व की समृद्ध तथा सर्वश्रेष्ठ भाषा बहुत से मनुष्यों द्वारा समझी जाती है परन्तु संस्कृत के साथ तुलना करने से ज्ञात होगा कि अंग्रेजी संस्कृत के सामने कुछ नहीं। पहले अंग्रेजी को लिपि पर ध्यान दीजिए। अंग्रेजी की लिपि में २६ अक्षर हैं, उससे हमारी लिपि के त-थ-द-ध-ण, का तो उच्चारण किसी हालत में भी नहीं हो सकता, तथा ङ-ञ आदि के उच्चारण में भी इसी कठिनता का सामना करना पड़ता है। घ-छ-झ आदि बहुत से अक्षर ऐसे हैं, जिन्हें बनाने के लिए अंग्रेजी के एकाधिक अक्षरों की शरण लेनी पड़ती है तथा उच्चारण में भी बहुत अन्तर पाया जाता है। संस्कृत में उस अक्षर का उच्चारण हर हालत में वही होता है, जो उसके लिए नियत किया गया है, परन्तु अंग्रेजी में ऐसा नियम नहीं। जिस शैली से एक शब्द का उच्चारण होता है, उसी शैली द्वारा वैसे शब्दों का उच्चारण वैसा नहीं होता। यथा :—But और Put.

तथा कहीं किसी अक्षर का उच्चारण नहीं होता, यथा—Knife, Pneumonia कहीं निरर्थक अक्षरों को रख दिया जाता है, यथा-Light, Thought, कहीं अक्षरों के अभाव में ही उस जैसा उच्चारण हो जाता है, जैसे, Pure station इस प्रकार के उदाहरणों की न्यूनता नहीं यहाँ तो केवल दिग्मात्र दिखलाया गया है। इस प्रकार की गड़बड़ी इङ्गलिश में विद्यमान है। संस्कृत की देवनागरी लिपि में कोई गड़बड़ी नहीं है। देवनागरी लिपि के द्वारा मानव जो भी व्यक्त उच्चारण कर पाता है वह लिखा जा सकता है, परन्तु अन्य भाषाओं में वह सौकर्य नहीं। उर्दू आदि भाषा भी इसके सामने कुछ नहीं, यह सभी जानते हैं। अब भाषा सौष्ठव के विषय में भी कुछ शब्द कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

संस्कृत भाषा के पाणिनीय व्याकरण की प्रशंसा सभी भाषाओं के विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से की है। इसके प्रत्यय-बाहुल्य, धातु-बाहुल्य, समास-रचना एवं उपसर्गों के प्रयोग तथा स्वरपद्धति आदि विषय अपनी तुलना नहीं रखते। इसके प्रत्यय-बाहुल्य एवं धातु-बाहुल्य द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करने में जितनी सुविधा प्राप्त होती है उतनी अन्यत्र नहीं।

एक विशेषता इस भाषा की यह भी है कि उसमें वाक्य के शब्दों को उलट-पलट कर देने से भी कोई आपत्ति नहीं उठती जैसे "रामो रावणं हन्ति" इस वाक्य को "रावणं रामो हन्ति" "हन्ति रामो रावणम्" किसी तरह भी बदल दीजिए परन्तु अर्थ यही होगा कि 'राम रावण को मारता है।' इधर अंग्रेजी में "... father beats the son" इस वाक्य को [illegible]

दें तो अर्थ ही दूसरा होगा। तथा Beats the son the father दें तो अर्थ ही नहीं बैठेगा। करना चाहिए, इस अर्थ के वाचक 'कर्तव्यम्' के लिए "It is to be done" इन पांच शब्दों को मिलाना होगा। ... द्वारा अनेक शब्दों को संक्षिप्त करने की शैली इसी भाषा में पूर्णतया सकी है। यद्यपि अंग्रेजी में भी हमें ऐसा आभास मिलता है, परन्तु वह ... नहीं। पर्यायवाचक शब्दों की बहुलता इसी भाषा में विद्यमान ... भाषाओं में पर्यायवाचक शब्दों की बहुत न्यूनता है। इन्हीं शब्दों ... होने के कारण संस्कृत में भिन्न-भिन्न छन्दों में अनेक प्रकार की इतनी सरलता के साथ हो सकी है। इतर भाषाओं के कवियों को कविता करने में कितनी कठिनता का अनुभव करना होता होगा यह वे हैं।

संस्कृत ही सब भाषाओं का उद्गम स्थान है

... भाषा भारतीय भाषाओं की जननी है यह तो निर्विवाद ही है परन्तु देशों की भाषाएं भी संस्कृत से बहुत कुछ प्राप्त कर चुकी हैं। बंगाली, ...लम, तामिल आदि संस्कृत गर्भित हैं ही, मारवाड़ी, गुजराती, गुरुमुखी ... भी इसी की पुत्रियां हैं। वर्तमान हिन्दी का तो कहना ही क्या? भी बहुत से ऐसे शब्द हैं जो संस्कृत से निकले हैं, दिङ्मात्र यहां लिखा ... (त्रि), एट (अष्ट), डाटर (दुहितृ), फादर (पितृ), मदर (मातृ) ...), डोर (द्वार), कैम्फर (कर्पूर), रे (रश्मि) आदि आदि।

मृतभाषा के आरोप का सयौक्तिक खण्डन

. लोग लैटिन की तरह संस्कृत को भी मृतभाषा कहकर अपमानित करते विचार की कसौटी पर यह कथन असत्य एवं अनर्गल प्रलापमात्र होता है।

१) जिस भाषा के द्वारा हिन्दुओं के आजन्ममरण सभी संस्कार सम्पन्न ... भाषा में लिखित रामायण, महाभारत की कथा सुनकर कोटिशः ... को धन्य-धन्य मानतो हों, एवं जिसके पुनीत ग्रन्थों को पढ़कर ... अपने हृदय को आनन्द दे रहा हो उस भाषा को मृतभाषा कहना विडम्बना नहीं है?

२) जिस भाषा की अमूल्य सूक्तियां पढ़कर मानव समाज आनन्द के अपार पूर में डूब जाता हो, जिसके आदर्शों ने कार्यों के ... में ...

जोश की एक अपूर्व लहर दौड़ा दी हो, युद्ध में पराङ्मुख, परमुखापेक्षी नपुंसकों को जिस भाषा के वाक्यों ने शत्रुओं के हृदय कंपा देने वाले बना दिये हों; उस भाषा को मृतभाषा कहकर कलङ्कित करना क्या अन्याय का कदम नहीं है ?

(३) जिसके काव्यों की मधुर पदावली मानव हृत्तन्त्री के तारों में एक अपूर्व राग का सृजन करती हो, निजप्रेयोवियुक्त प्राणिमण्डल के तातप्यमान हृदय को कल्पना के सजीव आनन्दोपवन में घुमाती रहती हो, जो नश्वर जगती के शोकाकुल भावों से खिन्न हृदय-प्राणियों को शान्ति के उस निकेत की ओर ले जाने वाले ग्रंथों से भरी पड़ी हो, जिसमें कर्मयोग का सन्देश देनेवाले गीता जैसे अमूल्य रत्न हो, उसे मृतभाषा कहना क्या अपनी आत्मा की हत्या नहीं है ?

(४) जिस भाषा के पुनीत प्राङ्गण में भारत के महामहिम कवियों ने सोल्लास क्रीड़ा की, जिस भाषा के सुरभिमय उद्यान में भावुक रसिक-मण्डल ने सानन्द विहार किया, जिस भाषा की सकल्लोका कल्लोलिनी में शोकाकुल जगती ने सानन्द अवगाहन किया, जिस भाषा के उत्तुङ्ग हिमाचल पर लेखकवृन्द ने समोद विहार किया, उसी भाषा को मृतभाषा कहकर सम्बोधित करना क्या अपनी जिह्वा को कलंकित करने का झूठा प्रयास नहीं है ?

(५) जिसकी गोद में पलकर कालिदास ने संसार को एक नया सुर दिया जिसके प्रेम भरे आश्वासनों द्वारा उल्लसित श्री हर्ष ने संसार को नैषधीय चरित्र जैसी देन दी, जिसकी दुलारभरी थपकियाँ पाकर बाण ने गद्य-काव्य का आदर्श स्थापित किया, जिसके मधुर वचनो से आनन्दित माघ एवं भारवि ने संसार को अपने प्रति आकृष्ट किया जिसकी भव्य भावना से भावित भवभूति ने अपनी वाणी से जगती को आनन्दित किया, क्या उसी पुनीत भाषा को मृतभाषा जैसे गन्दे शब्द से पुकारना अपनी विज्ञता को तिलाञ्जलि देना नहीं है ?

(६) जिसमें वेद, पुराण, उपवेद, उपपुराण, इतिहास, स्मृति, वेदाङ्ग षड्-दर्शन, काव्य, नाटक, अलङ्कार शास्त्रोंके अपूर्व ग्रन्थ निधिरूप से विराजमान हों, उसे मृतभाषा की उपाधि देना क्या बौद्धिक दिवालियापन नहीं है। संस्कृत मृत-भाषा नहीं है ! कभी नहीं !! त्रिकाल में भी नहीं !!!

मृत भाषा के दो अर्थ होते हैं, एक तो मरे हुए प्राणियों की भाषा दूसरे मरी हुई भाषा। पहला अर्थ तो प्रत्येक भाषा के लिए घटित हो सकता है। क्या अंग्रेजी, उर्दू आदि मरे हुए प्राणियों की भाषा नहीं है ? दूसरा अर्थ तो किसी प्रकार से भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि भाषा कभी मरती नहीं। जो अमरों की

जो मृतप्रायों में जीवन का शङ्ख फूंकती हो, जो भीरुओं में वीरत्व … हो, जो प्राणिमण्डलके हृदय में ज्वालामुखी धधकाती हो उसे मृतभाषा … अन्याय है ! सर्वथा अनुचित है ! धोखा है ! पोल है !! वध … करने का घृणित प्रयास है !!!

साहित्य शब्दपर विचार

भाषा का महत्त्व, अर्थ, वैशिष्ट्य आदि बतला दिए गये हैं। अब … पर भी विचार कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा। साहित्य शब्द … आगे (ष्यञ्) प्रत्यय लगाने पर बनता है। जिसका अर्थ हितैषीका है। यद्यपि साहित्य शब्द का लक्षण अभी तक नहीं मिल सका है, जो प्राचीनोंने किये हैं, या तो वे काव्यों पर घट जाते हैं, अथवा काव्य …ों के बोधक हो जाते हैं। फिर भी साहित्य शब्दकी व्युत्पत्ति को …नने में कोई आपत्ति नहीं। हमारे संस्कृत साहित्य में साहित्य शब्द … सङ्गीत कलाविहीनः” इस भर्तृहरि के तथा “साहित्यपाथोदधिमन्थनोत्थं … हे कवीन्द्राः” इस कल्हण के वचन से पहले नहीं मिलता है। सर्व… शब्द के स्थान में वाङ्मय शब्द तथा इसके बाद काव्य शब्द का … था। इसके बाद साहित्य शब्द को ही अधिक उपयुक्त समझा … शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक संकुचित और दूसरा व्यापक। … में काव्य नाटक अलङ्कार का ही बोध होता है। व्यापक अर्थ में … का बोध होता है। प्रस्तुत लेख में इस व्यापक अर्थ को ही लिया …

संस्कृत साहित्य की अगाधता

… का अन्वेषण, संशोधक विद्वान् सैंकड़ों वर्षों से करते आ रहे … अगाध समुद्रके तल भाग का अभी पता नहीं लगा है। भला जिस … में सृष्टि से लेकर आजतक अगणित विद्वान् प्रयास करते रहे … की इयत्ता मालूम करना क्या दुःसाहस नहीं? यद्यपि इसका निर्माण रुका हुआ है, तो भी कोई साहित्य इसकी तुलना करने … रखता। संस्कृत साहित्य में चार वेद, चार उपवेद, छै वेदाङ्ग, … १८ उपपुराण, महाभारत, षड्दर्शन, धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक … आदि भेद एवं इनके अवान्तर भेद निहित हैं। अब संस्कृत साहित्य … संक्षिप्त वर्णन करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

वेद

संस्कृत-साहित्य में वेदों जैसी अपूर्व निधि विद्यमान है। वेद ही संस्कृत-साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। संसार के ऐतिहासिक विद्वान् इस बात को एकमत से स्वीकार करते हैं, कि ऋग्वेद से पुराना ग्रन्थ कहीं किसी साहित्य में भी नहीं है। वेद अनादि एवं अपौरुषेय हैं, ऐसा हिन्दू-संसारका विश्वास है। वेद सचमुच सभ्य संसार के ज्वलन्त रत्न हैं। इनमें जितना आलोक है उतना कहीं भी नहीं। हिन्दू-संसार का कोई भी संस्कार बिना वेदमन्त्रों के सम्पन्न नहीं होता।

उपवेद

चारों वेदों के चार उपवेद भी होते हैं—यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अर्थशास्त्र। उपवेद भी मानव-समाज के अत्यन्त काम की वस्तु हैं।

आयुर्वेद

मानव-जीवन की ही नहीं, प्राणिमात्र की एकमात्र उपकारक विद्याका नाम आयुर्वेद है। स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य-रक्षण एवं रुग्णकी व्याधि-निवारण के उपाय इस विद्यामें पूर्णतया समुल्लिखित हैं। इसके आठ अङ्ग हैं—१ शल्य, २ शालाक्य, ३ काय-चिकित्सा, ४ कौमार भृत्य, ५ अगदतन्त्र, ६ भूतविद्या, ७ रसायन, ८ वाजीकरणतन्त्र। इसके प्रत्येक अङ्गपर महर्षियों की पृथक्-पृथक् संहिताएं थीं। पहले पहल इस शास्त्र का उपदेश ब्रह्माजी ने किया। धीरे-धीरे समस्त भूमण्डलपर इसका प्रचार होता गया। प्राचीन कालमें इसके भिन्न-भिन्न अङ्गोंके भिन्न-भिन्न आचार्य होते थे। इस समय इस शास्त्रके कई अङ्ग विलुप्तप्राय हो चुके हैं। प्राचीन संहिताओं में केवल दो ही उपलब्ध हैं—पहली चरक तथा दूसरी सुश्रुत। आयुर्वेद हज़ारों वर्ष पहले भी पूर्ण विकसित था। इसके रसायन नामक अङ्गमें तो इतने आश्चर्यजनक आविष्कारोंका वर्णन है कि जिन्हें सुनकर आजके वैज्ञानिक हैरान हैं। इस शास्त्रमें चिकित्सा-पद्धति का जितना सुन्दर वर्णन है उतना संसार की किसी विद्या में नहीं। आज भी भारत की अधिकांश जनता का स्वास्थ्य आयुर्वेद पर ही अवलम्बित है। यह बड़ा ही गूढ़ शास्त्र है—केवल वात-पित्त-कफके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। इतना संक्षेप किसी अन्य चिकित्सा-प्रणाली की कल्पना के भी बाहर है।

धनुर्वेद

प्राचीन भारतमें धनुर्वेदका प्रचुर प्रचार था, या यों कहिए कि समस्त सैन्यशक्ति इसकी इसीपर ही अवलम्बित थी। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही है। महाभारतमें अद्भुत आविष्कारोंका वर्णन मिलता है, जिनके आगे आजके वैज्ञानिक

... मालूम होता है। नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र, मोह जृम्भकास्त्र, आदि अपना अपूर्व प्रभाव रखते थे। शब्दवेधी, प्रमाणवेधी ... महत्त्व की वस्तु थीं। इस शास्त्रमें धनुष चलानेकी क्रिया एवं विविध ... वर्णन है। धनुर्वाणका प्रचार प्राचीन भारत में बहुत था। आजकल विशेष प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता।

गान्धर्व वेद

यही सङ्गीतविद्याके नामसे प्रसिद्ध है। इसके प्राचीन आचार्य भरत ... यह शास्त्र इतने महत्त्व का है कि सृष्टि के आदि से अन्त तक चलता रहेगा ... राग, तान, लय, मूर्च्छना आदि का सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन है। संसार ... भिन्न प्राणियों की भिन्न-भिन्न बोलियों को सात स्वरों में अन्तर्भूत कर ... क्या कम है? सङ्गीतज्ञ विद्वान् समस्त प्रकृति पर अपना अधिकार ... है। यथेच्छ वर्णन कराना इसके बायें हाथ का खेल है। बुझे हुए दीप जलाना साधारण काम है। किं बहुना? यदि संसार पर अधिकार ... है तो वह संगीतशास्त्र-वेत्ता ही है।

अर्थशास्त्र

यह नीति-शास्त्र का पर्यायवाचक शब्द है। इसके सन्धि आदि छ अं... सच है कि साहित्य और संगीत के बिना समाज जी सकता ... नीति-शास्त्र के बिना नहीं। संस्कृत में शुक्रनीति आदि प्राचीन ग्रन्थ हैं ... कौटिलीय अर्थशास्त्र बहुत प्रशंसनीय ग्रन्थ है। सभी भाषाओं ... में इसीका अनुवाद है, एवं वे सभी इसी पर अवलम्बित हैं।

वेदाङ्ग

ये छ हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, एवं छन्द। ये सभी ... के उपकारक शास्त्र हैं।

शिक्षा

इसमें प्रातः, सायं एवं मध्याह्न में किस प्रकार अध्ययन करना चाहिए ... वर्णका किस प्रकार करना चाहिये, इसका सूक्ष्म वर्णन पाया जाता है। ग्रन्थ पाणिनीय शिक्षा आदि हैं। स्वरोच्चारण सूक्ष्मता को देखकर तो ... ही करना पड़ता है। अन्य भाषाओं में ऐसा विषय नहीं है।

कल्प

इसमें सम्यगधीत एवं परिज्ञान-छन्द का इस कर्म में प्रयोग होता है ... उल्लेख है)। यह भी असाधारण विषय है।

व्याकरण

यह संस्कृत-साहित्य का महत्त्वपूर्ण विषय है। व्याकरण बहुत से हैं, परन्तु पाणिनीय व्याकरण उच्च कोटि का है। इसके नियम एवं आठों अध्यायों का क्रम देख कर कानून के बड़े से बड़े विद्वान् को हैरान होना पड़ता है। इस व्याकरण की यह भी विशेषता है कि इस शब्द का अर्थ ऐसा क्यों होता है। भोजन का अर्थ भोजन क्यों होता है, यह पाणिनीय व्याकरण बतला सकता है, परन्तु 'फूड' का अर्थ भोजन क्यों हुआ, यह अंग्रेजी ग्रामर कभी नहीं बतला सकता। इसका विवेचन पहले भी कर दिया गया है।

निरुक्त

वेदार्थ जानने का साधन है। इसका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ यास्क का निरुक्त है। व्याकरण द्वारा शब्द-लक्षण-परिज्ञान होता है। इसके द्वारा शब्दार्थ निर्वचन-परिज्ञान होता है। यह भी असाधारण विषय है।

ज्योतिष

विषय संस्कृत-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। संसार के भूत-भविष्य का ज्ञान प्रत्यक्षद्रष्टा की तरह करा देना ज्योतिष का ही काम है। फिर भी विशेषता यह है कि ९ ग्रह एवं १२ भाव में ही सब कुछ सीमित कर रखा है। फलित शास्त्र बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। सभी प्राणियों की कुण्डलियों में ९ ग्रह एवं १२ भाव विद्यमान होते हैं, परन्तु फल ज्योतिषी एक-सा नहीं बतलाते। इससे इसकी सूक्ष्मता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसके गूढ़ अन्वेषण को देखकर संसार चकित है।

छन्द

यह भी सभी शास्त्रों से एक विलक्षण महत्त्व रखता है। इसे वेद का पाद कहा गया है। यह समस्त वाङ्मय का आधार माना जाता है। छन्दों के विषय में यों कहा गया है कि बिना छन्द के कोई वाणी नहीं निकलती। देवता मृत्यु से बचने के लिए वेदमन्त्रों में प्रविष्ट हुए तथा छन्दों ने उन्हें बचाया। ढकने से आच्छादित करने के कारण इसका नाम छन्द पड़ गया। यह छान्दोग्योपनिषद् का प्रमाण है। एक प्रसिद्ध वक्ता के भाषण में उतना आकर्षण नहीं होता, जितना कि एक साधारण गवैये के गान में होता है। यह छन्दों का ही महत्त्व है। छन्द विशेष कर श्रवण-प्रिय होते हैं। जिधर से गीत की ध्वनि आती है, उधर ही कान विशेष ध्यान देते हैं। मनोभावों को विशेष तरंगित करने

तियों में उल्लिखित हैं। मनुस्मृति भारत की ही नहीं, संसार की आदर्श वस्तु है। मनुस्मृति में जो विधान है, वही या उसका कुछ विकृत रूप संसार के विधान में है, हिन्दू-संसार को स्मृतियों की पग-पग पर आवश्यकता है। स्मृतियों के साथ-साथ सूत्र भी धर्मशास्त्र के अन्तर्गत हैं। पारस्करादि गृह्यसूत्र बहुत मान्य हैं।

काव्य

यह संसार की सजीव एवं रसमय वस्तु है। सृष्टि के चमत्कारों को देख कर मानव-हृदय में जिन तरङ्गों की उत्पत्ति होती है, उसे ही मनोहर शब्दों में व्यक्त करना काव्य का कार्य है। प्रत्येक प्राणी की प्रवृत्ति जन्म से ही सुखान्वेषण के लिए होती है। काव्य अनायास ही सुख देता है, अतः काव्य को ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा गया है। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य को बड़े-बड़े कष्टों का अनुभव करना होता है। अतीन्द्रिय ज्ञान के बाद ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है, परन्तु काव्य बिना किसी कष्ट के एक अलौकिक सुख देता है। अतः काव्य के प्रति मानव की प्रवृत्ति सहज ही होती है। काव्य के कानों में पड़ते ही आनन्द की एक लहर हृदय-सागर में उमड़ पड़ती है। काव्य-स्वाद का अनुभव उसके श्रवण मात्र से हो जाता है। काव्य के अध्ययन से दुःखी से दुःखी प्राणी भी अपने दुःख को भुला सकता है। अन्य शास्त्रों की अपेक्षा काव्य में एक विशेष आनन्द रहता है, यह सभी मानते हैं।

संस्कृत-भाषा में जितने सुन्दर काव्य हैं, उतने संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं—यह निर्विवाद है। जो सौन्दर्य श्री कालिदास एवं श्री हर्ष की भारती में है, वह सौन्दर्य संसार के किसी अन्य कवि की भारती में नहीं—यह सरलतया कहा जा सकता है। काव्य के एक-एक श्लोक में अपूर्व आनन्द एवं उपदेश रहता है। काव्य के दो भेद होते हैं—दृश्य एवं श्रव्य। श्रव्य में गद्य, पद्य और मिश्र—ये तीन भेद होते हैं। गद्य के भी कथा और आख्यायिका ये दो भेद हैं। पद्य के महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं कोश-काव्य ये तीन भेद हैं। मिश्र काव्य के चम्पू, विरुद एवं करम्भक—ये तीन भेद होते हैं। संस्कृत में गद्यकाव्य पद्य [illegible] अपेक्षा बहुत ही कम हैं। काव्य-सौन्दर्य के २-४ उदाहरण नीचे दिये

[१] [illegible] दास

[illegible]

)

[२] स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥

(रघुवंश महाकाव्यम्)

[३] [illegible] कर्माणि ।
[illegible] गुणकीर्तिसंहतिः ॥

(किरातार्जुनीयम्)

[४] [illegible] यदि ।
[illegible] परामवः ॥

[५] [illegible] ।
न [illegible] ॥

(अभिनवं भारतदिग्दर्शनमहाकाव्यम्)

[illegible] कितना मार्मिक चित्रण है ! क्या ऐसा वर्णन अन्य भाषा में हो [illegible] ! इन श्लोकों को सुनते ही रोमाञ्च हो उठता है, हृदय फड़कता है, [illegible] विशेष सिहरन हो उठती है। काव्य में ही ऐसी शक्ति है, जो कि समय [illegible] सकती है। विदुला की ओजस्विनी उक्ति किसे उत्साहपूर्ण नहीं करती ? संस्कृत-साहित्य के काव्यों की समता कहीं नहीं हो सकती !

नाटक

[illegible] दृश्य काव्यों को कहते हैं। दृश्य काव्य में भूतपूर्व घटनाओं का केवल [illegible] है, परन्तु नाटक में घटना-वर्णन के साथ-साथ एक आनन्ददायक [illegible] रहता है। इस प्रकार के अभिनय में भूतपूर्व घटनाओं का वर्तमान [illegible] करने की चेष्टा रहती है। नाटक में पाण्डित्य का उतना ध्यान नहीं [illegible], जितना कि दर्शकों को आनन्द प्राप्त कराने का। संस्कृत-साहित्य में [illegible] स्थान बहुत ऊँचा है। नाटक में एक विलक्षण चमत्कार रहता है। [illegible] । वृद्ध, मूर्ख या विद्वान्, स्त्री हो या पुरुष—नाटक सब को एक सा आनन्द [illegible] इसमें मानव-मात्र को अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति रहती है। [illegible] बार-बार सुनने पर भी उपस्थित नहीं रहता, उसे रंगभूमि में एक बार [illegible] उसका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। जितने सुन्दर नाटक संस्कृत-साहित्य [illegible] अन्यत्र नहीं। शकुन्तला नाटक संसार का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसकी [illegible] वाला नाटक संसार में न हुआ, न होगा। "काव्येषु नाटकं श्रेष्ठं [illegible]" यह वचन वास्तव में यथार्थ ही है। इस नाटक का सब [illegible] में अनुवाद होना ही इसकी सर्वश्रेष्ठता का प्रमाण है।

अलङ्कार शास्त्र

इसका भी संस्कृत-साहित्य में विशेष स्थान है। यह बड़े महत्त्व का विषय है। वेदों से लेकर साधारण ग्रन्थों तक का यह महान उपकारक है। राजशेखर ने इसका इतना महत्त्व देख कर ही इसे सप्तम वेदाङ्ग कहा है। भाषा का प्रयोग सभी कर सकते हैं, परन्तु उसमें सौन्दर्य एवं चमत्कार अलङ्कारशास्त्र का विज्ञ ही कर सकता है। भाषा चाहे गद्यमयी हो या पद्यमयी, उसे आनन्ददायिनी और मनोरञ्जिनी बनाना अलङ्कारशास्त्र का ही कार्य है। अलङ्कार शास्त्र का प्राचीन ग्रन्थ भारत का नाट्य शास्त्र ही उपलब्ध होता है। काव्य को सजाने का साधन ही अलङ्कार शास्त्र है। काव्य की आत्मा के विषय में आलङ्कारिकों में बड़ा मत-भेद है। अधिकांश आलङ्कारिक रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। नायक-नायिका आदि का सूक्ष्म भेद जितना संस्कृत-साहित्य के अलङ्कार-ग्रन्थों में है, उतना अन्यत्र नहीं।

कोश

यह भी महत्त्वपूर्ण विषय है। संसार की कोई भी भाषा बिना कोश-ग्रन्थों के जीवित नहीं रह सकती। इस परिवर्तनशील संसार में भाषा का परिवर्तन भी आवश्यक है। प्राचीन वेदों में प्रयुक्त होनेवाले सहस्रों शब्दों का प्रयोग अब नहीं हो रहा है। यदि वैदिक निघण्टु नहीं होता तो आज हम वेदों का अर्थ समझ ही नहीं सकते। शब्दार्थ का बोध कराना व्याकरण के साथ-साथ कोश का भी कार्य है। संस्कृत में विश्वकोश, शब्दकल्पद्रुम कोश आदि महत्त्वपूर्ण कोश विद्यमान हैं।

उपसंहार

इस प्रकार सर्वाङ्गपूर्ण इस पुनीत भारती को छोड़कर हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन देखने का स्वप्न जो आज भारत के महापुरुष ले रहे हैं, वास्तव में स्वप्न ही है। यदि भारतीय मानव-समाज का उपकार हो सकता है तो, इसी भाषा से, अन्य से नहीं।

वस्तुतः यही भाषा राष्ट्रभाषा के योग्य है। भारतवर्ष में संस्कृतज्ञों की संख्या कम नहीं, यदि आज हम एक सूत्र में आबद्ध होकर आवाज बुलन्द करें, तो किसी में कोई शक्ति नहीं कि इसे राष्ट्रभाषा होने से रोक सके।
